नागरिक शास्त्र

लेखक

कन्हैयालाल वर्मा, एम० ए०,

राजनीति विभाग, हिंदू विश्वविद्यालय

बनारस

रचयिता

नाज़ी जर्मनी, भारतीय राजनीति और शासन-पद्धति,

लोकनीति और राष्ट्रीयता, आदि,

प्रकाशक

नंदकिशोर ऐंड ब्रदर्स

बनारस

द्वितीय संस्करण] १६४०

संसार के

असंख्य, अज्ञात, आदर्श

नागरिकों को

PREFACE.

THIS elementary book on Civics has been written in accordance with the syllabus of the Board of High School and Intermediate Education, for IX and X classes. It is divided into two parts, the first dealing with Principles of Civics and the second with the Government of India, as it is and as it would be, in accordance with the Government of India Act, 1935.

It is impossible to get education in citizenship by reading a few books only. The student of Civics must himself think on various problems which are before him and his countrymen, and must translate his theoretical knowledge into action. Hence in this small book, effort has been made to develop the thinking capacity of students and to make them conscious of the action which ought to be the outcome of the study of Civics. At the end of each chapter there are a few exercises which, it is hoped, will be of immense help to both teachers and students, when the subject is being taught for the first time.

I am grateful to my friend, Pt. Ram Bahori Shukla, M. A., Professor of Hindi, Queen's College, Benares, for going through the proofs of the Hindi Edition of the book.

BENARES
30th January, 1938.

K. L. VERMA.

Preface to the Second Edition

IN this edition of the book, the matter is practically the same as in the revised first edition; but the language has been made more uniform and certain misprints have been corrected. The addition of a glossary of technical terms used in the book is the only special feature of this edition.

BENARES
30th January, 1940.

K. L. VERMA.

विषय-सूची

प्रथम खंड

नागरिक शास्त्र के सिद्धांत

पहला अध्याय

नागरिक शास्त्र का परिचय

नागरिक—नागरिकों के भेद—अनागरिक होना—नागरिकता—नागरिक शास्त्र—नागरिक शास्त्र का क्षेत्र—नागरिक शास्त्र और अन्य समाज-शास्त्र—नागरिक शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता।

नागरिक (Citizen)—नागरिक शब्द का अर्थ है नगर अथवा शहर का निवासी। प्राचीन काल में इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था किंतु आजकल इसका अर्थ इतना संकीर्ण नहीं है। वर्तमान राजनीति की दृष्टि से किसी देश का हर एक व्यक्ति—चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष; चाहे गाँव में रहता हो, चाहे नगर में—उसका नागरिक कहा जाता है। जो लोग किसी देश में पैदा होते हैं, केवल वे ही उसके नागरिक नहीं होते; दूसरे देशों में उत्पन्न लोग भी उसके नागरिक हो सकते हैं। परंतु ऐसा करने के लिए उन्हें उस देश के कुछ नियमों को पूरा करना पड़ता है।

ऊपर जिस अर्थ में नागरिक शब्द लिया गया है, उसके विचार से हमारे देश भारतवर्ष में जिस किसी का जन्म हुआ है, वह यहाँ का नागरिक है। हिंदू, मुसल्मान, ईसाई, पारसी, सिक्स आदि सभी धर्मों के अनुयायी भारतीय नागरिक हैं। भारतीय नागरिक होने के लिए धर्म, संप्रदाय, जाति, व्यवसाय आदि सिकी

के कारण कोई रुकावट नहीं है। वे विदेशी भी, जो अपना देश छोड़ कर, यहाँ बस जाते हैं, भारतीय नागरिक हो सकते हैं।

नागरिकों के भेद—किसी देश के नागरिक बनने के दो तरीक़े हैं—(१) देश के किसी मूल नागरिक की संतान होने से, (२) विदेशी लोग, किसी देश के नियमों के अनुसार, निश्चित शर्तों को पूरी करने से, उस देश के नागरिक बन सकते हैं। पहले प्रकार के लोगों को स्वाभाविक या जन्मसिद्ध नागरिक (Natural Citizens) कहते हैं और दूसरे प्रकार के लोगों को कृत्रिम नागरिक (Naturalised Citizens)।

स्वाभाविक नागरिकता—यह किसी देश में जन्म लेते ही प्राप्त हो जाती है। प्रायः सभी स्वतंत्र प्रजातंत्र देशों में उत्पन्न लोग, वयस्क होते ही नागरिकता के सब अधिकार पा जाते हैं। परंतु कुछ देशों में नागरिकता के राजनीतिक अधिकार सब को नहीं दिये जाते। फ्रांस में अब तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया है। भारतवर्ष में राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए, वयस्क होने के साथ ही, शिक्षा, संपत्ति आदि की भी आवश्यकता होती है। प्रायः सभी देशों में वय, शिक्षा, संपत्ति आदि की शर्तें पूरी करने पर भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वहाँ की नागरिकता के राजनीतिक अधिकार नहीं होते। पागलों को तो कहीं भी वोट देने का अधिकार नहीं होता। साथ ही दिवालिये, राजद्रोही, दूसरे देश के नागरिक बननेवाले और क़ानून के विरुद्ध कुछ भारी अपराध करनेवाले दंड-प्राप्त लोग भी ऐसे अधिकार से

वंचित होते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, आजकल स्त्री और पुरुष दोनों को, प्रायः सभी उन्नत और प्रजातंत्र राज्यों में नागरिकता के समान अधिकार होते हैं।

कृत्रिम नागरिकता—इसका प्राप्त करना आजकल बहुत आवश्यक सा हो गया है। किसी देश के निवासी, व्यवसाय, उद्योग-धंधा, नौकरी, धार्मिक उद्देश्य, राजनीतिक व्यवहार आदि के लिए बहुधा दूसरे देशों में जाते और वहाँ सुविधा पाने पर बस जाते हैं। वहाँ अपने जीवन और धन की रक्षा और उन्नति के लिए नागरिकता के अधिकार पाये बिना उनका काम नहीं चल सकता। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि वे उस देश में कुछ निश्चित समय तक एक सिलसिले में रहें और उसके नागरिक होने की प्रतिज्ञा करें एवं उसके प्रति भक्ति की शपथ लें। साथ ही वहाँ की राष्ट्र-भाषा का ज्ञान, अपनी जीविका कमाने की शक्ति और ज़मीन, जायदाद आदि स्थावर संपत्ति का ख़रीदना भी इसके लिए आवश्यक होता है।

इस प्रकार नागरिकता-प्राप्त लोगों के अतिरिक्त बहुत से विदेशी लोग भी प्रायः सभी देशों में रहा करते हैं। वे जिस देश में जाकर रहते हैं, उसके क़ानून उन्हें मानने पड़ते हैं और उन्हें वहाँ कर भी देने होते हैं। साधारणतया राजनीतिक अधिकारों के अतिरिक्त उन्हें नागरिकों के और सब अधिकार होते हैं और उन्हें उनके समान कर्तव्य करने पड़ते हैं। हाँ, वे मत (वोट) नहीं दे सकते, प्रतिनिधि नहीं हो सकते और राज्य-संबंधी कार्य भी

नहीं कर सकते। यदि कभी युद्ध छिड़ जाता है और वे शत्रु-देश के निवासी हुए तो वे अपने देश नहीं जा पाते और उसी देश में युद्धकाल तक के लिए किसी नियत स्थान या सीमा के भीतर बंदी से कर दिये जाते हैं। परंतु शांति के दिनों उनकी स्वतंत्रता, अधिकार और बंधन आदि साधारणतः उस देश के नागरिकों के समान रहते हैं। ऐसे लोगों के हितों की रक्षा उनके ही देश के राजदूत जो उस देश में रहते हैं, किया करते हैं।

अनागरिक होना (Loss of Citizenship)—ऊपर यह बतलाया गया है कि नागरिकता किनको, कैसे मिलती है। यदि नागरिकता मिल सकती है तो वह छीनी भी जा सकती है या स्वयं लुप्त हो सकती है। प्रायः सब देशों के दंड-विधान में कुछ अपराध बहुत ही बुरे और अनुचित समझे जाते हैं। जो लोग उनके दोषी ठहरते हैं वे अपने देश के नागरिक नहीं रह सकते। जो लोग किसी दूसरे देश के नागरिक बन जाते हैं वे भी अपने जन्म या मूल देश की नागरिकता खो देते हैं। कभी कभी एक देश में रहनेवाली स्त्री का दूसरे देश के पुरुष से विवाह हो जाता है। बहुतेरे देशों में यह नियम है कि इस तरह की स्त्री अपने मूल देश की नागरिक नहीं रह जाती। कुछ देशों में यह नियम है कि यदि वहाँ का नागरिक किसी विशेष काल तक, जो उनके नियमानुसार निश्चित होता है, दूसरे देश में रहे, तो वह अपने देश का नागरिक नहीं रह जाता।

नागरिकता (Citizenship)—कुछ दिनों पूर्व नागरिक के अधिकारों को सामूहिक रूप में नागरिकता कहते थे। उन दिनों

कर्तव्यों की अपेक्षा अधिकारों पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। परंतु आजकल ऐसा नहीं है। अब नागरिक के अधिकारों और कर्तव्यों दोनों पर समान ज़ोर दिया जाता है। इसलिए आजकल नागरिकता शब्द में नागरिक के अधिकारों और कर्तव्यों दोनों का समावेश होता है। कोई भी नागरिक समाज की अनेक प्रकार की संस्थाओं के बिना अपना जीवन सुख से व्यतीत नहीं कर सकता। इन संस्थाओं के प्रति, चाहे वे राष्ट्रीय हों, चाहे अंतर्राष्ट्रीय, उसके अधिकार होते हैं और कर्तव्य भी। अपने तईं भी उसके कुछ कर्तव्य होते हैं और ईश्वर के प्रति भी। प्रत्येक नागरिक के जीवन में कभी कभी ऐसे अवसर अवश्य आते हैं, जब उसको यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि वह एक व्यक्ति अथवा संस्था के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करे अथवा दूसरे के प्रति। उदाहरण के लिए एक ऐसे नागरिक को लीजिये जो एक कुटुंब में रहता है, क्रिकेटक्लब का सदस्य है, चुनाव में वोट देने का अधिकारी है और जिसके कई घनिष्ट मित्र भी हैं। किसी निश्चित दिन, जब उसको वोट देने जाना है, उसकी माता बीमार हो जाती है, उसके मित्र के यहाँ से शीघ्र ही आने का बुलावा आता है और क्रिकेटक्लब का वार्षिकोत्सव भी उसी दिन मनाया जाता है। उस नागरिक के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह वोट देने जाय या माता के निकट बैठे, या मित्र के घर जाय या क्रिकेटक्लब के वार्षिकोत्सव में शामिल हो। नागरिकता का सार इसी में है कि वह अपने कर्तव्यों का क्रम ठीक ठीक निर्धारित कर सके। कर्तव्यों

का ठीक क्रम क्या है इसके विषय में समस्त मानव-समाज का एक आदर्श होना असंभव है। साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि नागरिक को अपने व्यक्तिगत् हितों की अपेक्षा समाज अथवा संस्थाओं के हितों को श्रेष्ठतर समझना चाहिये, पर अपने को पूर्णतया भुला कर नहीं। व्यक्तिगत् एवं समाजिक स्वार्थों और हितों में ठीक संबंध बनाये रखने ही का नाम नागरिकता है।

नागरिक शास्त्र (Civics)—नागरिकता से संबंध रखनेवाले शास्त्र का नाम नागरिक शास्त्र है। इसमें नागरिकों के कर्तव्यों और अधिकारों की व्याख्या की जाती है, और इस विषय के सिद्धांत निर्धारित किये जाते हैं। ये सिद्धांत साधारणतया ठीक होते हैं, पर इतने ठीक नहीं, जितने गणित के सिद्धांत। नागरिक शास्त्र का विद्यार्थी, गणित के विद्यार्थी की भाँति, यह नहीं कह सकता कि अमुक कार्य का अमुक ही परिणाम होगा। वह केवल इतना ही कह सकता है कि यदि परिस्थिति अमुक प्रकार की हुई, तो अमुक प्रकार के परिणाम की संभावना है।

नागरिकता का सार है व्यक्ति और समाज की साथ साथ उन्नति। अतएव नागरिक शास्त्र में यह बतलाया जाता है कि प्रत्येक नागरिक समाज के दूसरे लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे और समाज के संगठन और उन्नति के लिए क्या करे। आजकल आने-जाने के साधनों की उन्नति तथा दूसरे कारणों से संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं रह गया है जो दूसरे देशों से अलग रह सकता हो या अपने सब काम अपने आप ही चला

सकता हो। इसलिए नागरिक शास्त्र में यह भी बताया जाता है कि पड़ोस वा दूर के देशों के प्रति मनुष्य को क्या करना चाहिये और समस्त मानव समाज के प्रति उसको कैसा व्यवहार करना चाहिये। इन बातों के बतलाने में नागरिक शास्त्र इतिहास की सहायता लेता है। भूतकाल की नागरिकता का क्या रूप था; उसमें क्या क्या बुराइयाँ थीं और कौन कौन सी अच्छाइयाँ; इस ज्ञान के होते हुए आज और भविष्य में हमें अपने कर्तव्यों का पालन किस प्रकार करना चाहिये; इन बातों का भी वर्णन नागरिक शास्त्र में किया जाता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि नागरिक शास्त्र में नागरिक के अधिकारों और कर्तव्यों एवं सामाजिक जीवन की आवश्यकता और सामाजिक उन्नति के साधनों का वर्णन होता है। उसका उद्देश्य है यह बतलाना कि हम सब लोग मिलकर अपने जीवन को सुखमय कैसे बना सकते हैं।

नागरिक शास्त्र का क्षेत्र (Scope of Civics)—एक समय था जब नागरिक शास्त्र में किसी देश के शासन पर ही विचार किया जाता था। उसमें बतलाया जाता था कि उसके शासन-संबंधी नियम कैसे बनते हैं, उन नियमों पर कैसे व्यवहार किया जाता है और उन नियमों पर व्यवहार न करने पर न्याय की व्यवस्था कैसे की जाती है। परंतु अब नागरिक शास्त्र अधिक व्यापक हो गया है। उसमें मनुष्य समाज के विकास और उसके संगठन की बहुत सी बातों पर विचार किया जाने लगा है। अब उसमें उपर्युक्त बातों के साथ ही मनुष्य के सामाजिक जीवन की

उन्नति; व्यक्ति और समाज का संबंध; राज्य में शांति और व्यवस्था की आवश्यकता एवं सामाजिक स्वास्थ्य, शिक्षा. चिकित्सा, न्याय तथा सुविधाओं का प्रबंध; नागरिक के अधिकार और कर्तव्य; राजनीति-संबंधी सिद्धांतों का विकास तथा अन्य देशों से संबंध आदि पर भी विचार किया जाता है। इतना ही नहीं अब नागरिक शास्त्र का क्षेत्र व्यक्ति और देश की संकुचित सीमा से बढ़ कर समस्त मानव-समाज एवं विश्व तक फैल गया है। अब उसमें केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर ही ज़ोर नहीं दिया जाता, वरन् उस ज्ञान के व्यावहारिक रूप पर भी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि मानव जीवन के समस्त अंगों का, विशेष कर राजनीतिक जीवन का, अध्ययन करना नागरिक शास्त्र का क्षेत्र है। उसमें यह बतलाया जाता है कि मानव जीवन के भिन्न भिन्न अंगों का परस्पर क्या संबंध है। उसका क्षेत्र सिद्धांतों तक ही सीमित नहीं है। उसमें सिद्धांतों पर उतना ही ज़ोर दिया जाता है जितना उनके व्यावहारिक रूप पर।

नागरिक शास्त्र और अन्य समाज-शास्त्र—नागरिक शास्त्र एक समाज-शास्त्र (Social Science) है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना उसका जीवन जानवरों से भी गया बीता हो जाता है। वह हमेशा से समाज में ही रहता चला आया है। इस कारण उसके कई प्रकार के सामाजिक संबंध स्थापित हो गये हैं। धीरे धीरे इन संबंधों के सिद्धांतों का अध्ययन किया जाने लगा और उनमें से प्रत्येक महत्वपूर्ण संबंध के विषय में एक शास्त्र बन

गया; जैसे राजनीति शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान आदि। इन सब शास्त्रों को सामूहिक रूप में समाज-शास्त्र कहते हैं। नागरिक शास्त्र भी इसी प्रकार का एक समाज-शास्त्र है।

नागरिक शास्त्र का अन्य समाज-शास्त्रों के साथ घना संबंध है। इतिहास, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि सभी शास्त्र अपनी अपनी सामग्री नागरिक शास्त्र के लिए प्रस्तुत करते हैं। इसी सामग्री के आधार पर नागरिक शास्त्र में नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों की विवेचना की जाती है। इस दृष्टि से नागरिक शास्त्र अन्य समाज-शास्त्रों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। उसका क्षेत्र भी अन्य समाज-शास्त्रों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है।

नागरिक शास्त्र के ज्ञान की आवश्यकता—उपर्युक्त ब्योरे से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल नागरिक शास्त्र का ज्ञान सर्वसाधारण के लिए कितना आवश्यक और उपयोगी है। भारतवर्ष में इसकी शिक्षा की आवश्यकता अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। हमारे देश में भाँति भाँति की शासन-प्रणालियाँ हैं। कहीं पर निरंकुश शासन है और कहीं पर लोकतंत्र स्थापित हो रहा है। समाज अनेक बुराइयों से भरा हुआ है। धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक हलचल नित्य बनी रहती है। देहातों में सैकड़ों एक समय रूखा-सूखा भोजन पाकर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सफ़ाई की कमी के कारण सैकड़ों अकाल ही मृत्यु के शिकार बन रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक नागरिक को अपने कर्तव्यों का पालन किस प्रकार करना चाहिये, इसका ज्ञान नागरिक शास्त्र के अध्ययन

के बिना होना कठिन है। नागरिक शास्त्र के ज्ञान से ही मनुष्य अपने कर्तव्यों का क्रम निश्चित कर सकता है। इसकी ही शिक्षा से मनुष्य और समाज की वास्तविक उन्नति का मार्ग दिखायी पड़ता है। अस्तु, नागरिक शास्त्र का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिए परम आवश्यक और अत्यंत उपयोगी है।

अभ्यास

१—नागरिक किसे कहते हैं ? क्या नागरिक होने के लिए राजनीतिक अधिकारों का होना आवश्यक है ?

२—किसी देश के नागरिक बनने के कौन कौन से उपाय हैं ?

३—नागरिकता किसे कहते हैं ?

४—'नागरिकता में अधिकार और कर्तव्य दोनों का समावेश होता है।' इस वाक्य को समझाइये।

५—नागरिक शास्त्र की परिभाषा लिखिये और यह बतलाइये कि नागरिक शास्त्र का अन्य समाज-शास्त्रों से क्या संबंध है।

६—नागरिक शास्त्र की शिक्षा की आवश्यकता पर एक निबंध लिखिये।

दूसरा अध्याय
मनुष्य और समाज

समाज—समाज का विकास—समाज का संगठन—व्यक्ति और समाज का संबंध।

समाज (Society)—मनुष्य समाज में रहनेवाला प्राणी है। वह अकेले रहना पसंद नहीं करता। वह अकेले रह भी नहीं सकता। असभ्य अवस्था में भी वह समूहों में रहा करता था। मनुष्य के किसी समूह को, चाहे वह संगठित हो, चाहे असंगठित, समाज कतते हैं।

समाज का विकास (Evolution of Society)—आरंभ में समाज बड़ा संकीर्ण था। शायद उसका सबसे पहला रूप कुटुंब था। स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर साथ साथ रहने लगे थे। अतएव उन दिनों कुटुंब के ही रूप में समाज का अस्तित्व था। क्रमशः मनुष्य समाज का विकास होने लगा। एक कुटुंब के सदस्य दूसरे कुटुंब के सदस्यों के साथ मिलकर रहने लगे या बलवान कुटुंबों के सदस्य निर्बल कुटुंबों अथवा मनुष्यों को जीतकर अपने अधीन करने लगे। इस प्रकार समाज का आकार बढ़ने लगा। क्रमशः कुलों (Tribes) के रूप में समाज दिखायी पड़ने लगा। ये कुल असभ्य मनुष्यों की भाँति या तो मृगया करके जीवन व्यतीत करते थे या पशुओं को लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान में फिरा करते थे। कुछ समय के बाद उन्होंने कुछ स्थानों पर अपना अधिकार जमा लिया और वहीं पर रहने लगे। इस प्रकार बस्तियों का जन्म हुआ। पहले की अपेक्षा अब

मनुष्य भी कुछ सभ्य हो चला था। वह अपने हितों और अहितों को पहचानने लगा था। उसे यह भी मालूम हो गया था कि युद्ध की अपेक्षा सहयोग से जीवन अधिक सुखमय बनाया जा सकता है। भाषा, संपत्ति के लोभ और आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण धीरे धीरे समाज का आकार और भी बढ़ा। नगरों की उत्पत्ति हुई, वाणिज्य व्यवसाय बढ़ा, मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ीं और आने-जाने के रास्ते सुधारे गये। अब राष्ट्रों के रूप में समाज दिखायी पड़ने लगा। समाज के विकास का क्रम अब तक जारी है। यह तब तक जारी रहेगा जब तक समस्त मानव-मात्र का एक समाज न बन जाय।

समाज का संगठन—समाज का संगठन हमेशा एकसा नहीं रहा है। मनुष्य चेतन प्राणी है। उसका निरंतर विकास होता रहता है। इसलिए उसकी आवश्यकताओं और रुचि के अनुसार समाज में सदैव उन्नति और परिवर्तन होते रहते हैं। इसी परिवर्तन में मनुष्य के सुभीते, सुख, रक्षा और उन्नति निर्भर रहते हैं। आजकल देश-प्रेम और विश्व-प्रेम के भावों से ही मनुष्य प्रेरित हो रहा है। अतएव समाज का भी संगठन इन्हीं के अनुरूप होता जाता है। अभी तक देश-प्रेम की प्रधानता है। इसलिए मनुष्य मानव-मात्र के हितों की अपेक्षा अपने राष्ट्र के हितों को उच्चतर समझता है। पर भविष्य में शायद ऐसा न हो। विश्व-प्रेम की चर्चा कुछ दिनों से जारी है और यद्यपि अभी तक उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं हो पायी है तो भी, इसमें संदेह नहीं,

अधिक दिन नहीं बीतेंगे जब देश-प्रेम की अपेक्षा विश्व-प्रेम का स्थान ऊँचा होगा।

व्यक्ति और समाज—समाज व्यक्तियों से बनता है। व्यक्ति भी समाज के ही अंग होते हैं, उससे अलग नहीं हो सकते। इसलिए व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है। जन्म लेते ही व्यक्ति को दूसरों की आवश्यकता पड़ती है। यदि माता अथवा दूसरों के द्वारा उसका पालन न हो तो उसका जीवन ही नहीं रह सकता। इसी तरह उसे खेलने-कूदने, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि के लिए आवश्यक सभी चीज़ें दूसरों से ही मिलती हैं। जैसे जैसे वह बढ़ता जाता है, उसकी आवश्यकताओं का घेरा भी बढ़ता जाता है। उसको अपने घरवालों, पड़ोसियों, नगर और देशवालों की बनायी हुई वस्तुओं से काम पड़ता है। इस तरह घर और बाहर सर्वत्र मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समाज के दूसरे लोगों का सहयोग ज़रूरी होता है। उसके बिना उसका काम चलना असंभव हो जाता है। उसी में उसका विकास होता है। उसी में वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। समाज के बिना मनुष्य का जीवन कदापि सुखमय नहीं हो सकता।

जिस प्रकार व्यक्ति का काम समाज के बिना नहीं चल सकता, उसी प्रकार समाज का कोई काम व्यक्तियों के बिना नहीं हो सकता। समाज, जैसा बतलाया जा चुका है, व्यक्तियों के मेल से ही बनता है। उसका व्यक्तियों के बिना अस्तित्व नहीं हो सकता।

इसलिए व्यक्तियों के आपस के सहयोग से ही समाज के काम चलते हैं और उसका विकास होता है। यदि व्यक्ति मिलकर एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न न करें तो समाज चल ही नहीं सकता। इससे यह मालूम हो जाता है कि व्यक्ति ही समाज के अस्तित्व का आधार है।

समाज और व्यक्ति के संबंध के विषय में कुछ लोगों का मत है कि व्यक्ति समाज के लिए है और कुछ का, कि समाज व्यक्ति के लिए है। पहले मतवाले कहते हैं कि व्यक्ति की उन्नति और विकास का कारण समाज ही है। समाज के बिना उसका जीवन बेकार है। इसलिए व्यक्ति की अपेक्षा समाज का स्थान बढ़कर है। समाज साध्य है और व्यक्ति के समाज के उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। दूसरे मतवाले इन विचारों से सहमत नहीं हैं। वे व्यक्ति को साध्य बतलाते हैं और कहते हैं कि समाज व्यक्ति के उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। उपर्युक्त दोनों मत भ्रमपूर्ण हैं। समाज और व्यक्ति दोनों का इतना घनिष्ट संबंध है कि दोनों के उद्देश्य की पूर्ति में विरोध का होना असंभव है। अतएव केवल इतना ही नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति समाज के लिए है। न यही कहा जा सकता है कि समाज व्यक्ति के लिए है। वरन् दोनों दोनों के लिए हैं और दोनों एक दूसरे के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हैं।

अभ्यास

समाज की परिभाषा लिखिये और यह बतलाइये कि व्यक्ति और समाज में क्या संबध है ?

तीसरा अध्याय

नागरिक और समुदाय (१)

सामाजिक समुदाय—गोत्रात्मक समुदाय—परिवार अथवा कुटुंब, कुटुंब के प्रकार, स्त्री और पुरुष के कर्तव्य, कुल तथा जाति या बिरादरी—व्यवसायात्मक समुदाय—धार्मिक समुदाय—शिक्षा, ज्ञान, स्वास्थ्य और विनोद के तथा अन्य समुदाय।

सामाजिक समुदाय—मनुष्य के उद्देश्य और हित अनेक प्रकार के सामाजिक समुदायों (Associations) के द्वारा पूरे होते हैं। यदि बहुत से क्षेत्रों में समाज के असंख्य काम बाँट न दिये जायँ तो उनका होना असंभव सा हो जाय। इससे समाज में अनेक समुदायों की आवश्यकता पड़ती है। ये समुदाय देश, काल, आवश्यकता आदि के अनुसार घटते, बढ़ते और बदलते रहते हैं। इसलिए इनकी ऐसी सूची तैयार करना कठिन है जो सदा के लिए पूरी समझी जाय। फिर भी सुभीते के लिए हम इनको निम्नलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं—

(१) गोत्रात्मक समुदाय, जो उत्पत्ति के विचार से होते हैं। जैसे, कुल, कुटुंब, जाति।

(२) व्यवसायात्मक अथवा कार्यात्मक समुदाय, जो किये जानेवाले व्यवसाय (रोज़गार) या कामों के अनुसार बनते हैं। जैसे, वर्ण, संघ, श्रेणी आदि।

(३) धार्मिक या ध्येय-संबंधी समुदाय, जो आध्यात्मिक विचारों के आधार पर बनते हैं। जैसे, पंथ, संप्रदाय आदि।

(४) शिक्षा, विनोद, लोकसेवा के तथा अन्य समुदाय।

(५) प्रदेशात्मक समुदाय, जो स्थल विशेष में रहनेवालों के कारण बनते हैं। जैसे, गाँव, नगर, देश आदि।

(६) राजनीतिक समुदाय, जो राजकीय आधार पर बनते हैं। जैसे, कांग्रेस, राष्ट्र-संघ आदि।

इसी प्रकार अन्य दृष्टियों से भी समाज में समुदायों को जन्म मिलता है। यहाँ पर उक्त समुदायों पर कुछ विचार किया जायगा।

गोत्रात्मक समुदाय—(१) परिवार तथा कुटुंब—जन्म लेते ही व्यक्ति का सबसे पहले अपनी माँ या धाय से नाता होता है। उसका पालन-पोषण पहले पहल उसी के द्वारा होता है। यदि वह न हो तो बहुत संभव है वह जीता ही न रह सके, बड़ा होकर नागरिक होना तो दूर रहा। माता के बाद बच्चे का पिता से संबंध होता है। अधिकांश देशों में और प्रायः सभी सभ्य समाजों में माता और पिता ही व्यक्ति की वृद्धि के साधन होते हैं। इन्हीं माता, पिता, पुत्र, पुत्री, आदि के मिलने से एक परिवार या कुटुंब बनता है। इसका मुख्य उद्देश्य अपना विस्तार और रक्षा करना होता है। इस प्रकार एक साथ रहनेवाले स्त्रियों और पुरुषों के उस समूह को कुटुंब या परिवार कहते हैं, जिनका उद्देश्य अपने वंश की उन्नति, रक्षा और विस्तार करना होता है। स्त्री और पुरुष के अतिरिक्त संतति की गणना कुटुंब में ही होती है।

कुटुंब के होने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष के संबंध की पवित्रता बनी रहे; संतान में आपसी मेल और बड़ों की आज्ञा का पालन हो और सब भरण-पोषण के लिए आवश्यक व्यवसाय या उद्योग करें। समाज की सब से पहली संस्था परिवार ही है। वंश की परंपरा इसी से बढ़ती और बची रहती है; यहीं व्यक्ति को आरंभिक शिक्षा मिलती है और यहीं वह वे सब बातें सीखता है जिनका आगे चलकर नागरिक जीवन में उसे काम पड़ता है; यहीं वह नित्य के जीवन में आज्ञापालन, दूसरों के प्रति अपने कर्तव्य, सेवा, प्रेम, मेल, त्याग, परिश्रम आदि के पाठ पढ़ता है। यहीं घर का स्वामी गृहस्थी के संचालन के लिए उपयुक्त व्यवसाय या धंधा करता हुआ, सबको मेल से रखकर, सबके सुख के लिए निष्पक्ष होकर व्यवहार करता है। यहीं वह पहले पहल अपने निजी सुखों की उपेक्षा कर दूसरों के सुख की व्यवस्था करने का अभ्यास करता है। परिवार में ही गृह-स्वामी के अतिरिक्त अन्य लोग भी अपने अपने लिए ही सोचना छोड़कर दूसरे के लिए जीने का मर्म जानते हैं। यहीं पर सब लोग अपने व्यक्तिगत् विचारों की पूर्ति के लिए हठ न करके आपस की सलाह और मेल से काम करना सीखते हैं। कुटुंब में ही लोग उदारता और त्याग का अभ्यास करते हैं। ऐसी अनेक आदतें मनुष्य परिवार में ही सीखता है जिनका उसे नागरिक जीवन में प्रयोग करना पड़ता है। इस तरह कुटुंब सामाजिक एवं नागरिक जीवन की पहली पाठशाला है। यहीं मनुष्य की नागरिक शिक्षा आरंभ होती है।

कुटुंब के प्रकार और स्त्री और पुरुष के कर्तव्य—कुटुंब दो प्रकार के होते हैं, एक विभक्त (Individual) और दूसरा अविभक्त (Joint)। विभक्त कुटुंब में एक गृहस्थ, उसकी पत्नी और उसके बच्चे ही सम्मिलित होते हैं, परंतु अविभक्त कुटुंब में गृहस्थ की पत्नी तथा बच्चों के अतिरिक्त उसके भाई, पिता, माता, चचा, भतीजे एवं उनके स्त्री और बच्चे भी साथ रहते हैं। अविभक्त कुटुंब की प्रथा हमारे देश में बहुत पुरानी है। उसमें सारी गृहस्थी की कमाई, ख़र्च और कारबार एक साथ होते हैं। सब से बड़ा पुरुष घर का स्वामी होता है। वही घर की सारी व्यवस्था करता है।

कुटुंब के दो प्रकार और भी हैं, (१) पितृप्रधान (Patriarchal) और (२) मातृप्रधान (Matriarchal)। पितृप्रधान कुटुंब में पुरुष की प्रधानता होती है और मातृप्रधान कुटुंब में माता की। पितृप्रधान कुटुंब में पुरुष ही घर का मालिक होता है। और घर की स्त्रियाँ, बच्चे, नौकर आदि उसके अधीन होते हैं। वही घर भर के भरण-पोषण के लिए कमाता और प्रबंध करता है। इस प्रकार के कुटुंब में स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकार कम होते हैं। पिता के बाद संपत्ति का उत्तराधिकार उसके पुत्रों को ही मिलता है, यहाँ तक कि उनकी माता को भी उन्हीं के अनुसार चलना पड़ता है। अधिकांश देशों में पितृप्रधान कुटुंब की प्रथा प्रचलित है; परंतु कुछ स्थान ऐसे भी हैं जिनमें मातृप्रधान परिवार होते हैं। हमारे देश के मलाबार प्रदेश में नायर लोगों में

यह प्रथा पायी जाती है। मातृप्रधान कुटुंब में गृहिणी ही घर की स्वामिनी और अधिकारिणी होती है। उसमें पुरुष अप्रधान होता है और संपत्ति का उत्तराधिकार पुत्री को मिलता है।

प्रचलित कुटुंब-प्रणाली पर, इधर बहुत आक्षेप हो रहे हैं। अब स्त्रियों को पुरुषों के ही समान अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चल रहे हैं। प्रायः सभी प्रजातंत्र देशों में नागरिकता के अधिकार दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं। इस कारण यह संस्था अब शिथिल हो चली है। कहीं कहीं इसमें अशांति के चिह्न भी दिखायी पड़ने लगे हैं। परंतु नागरिक शास्त्र की शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह कुटुंब के लोगों को ऐसा आचरण और काम करना सिखाये जिससे कुटुंब का सुख और समृद्धि बढ़े। इसलिए कुटुंब के पुरुषों को अपनी स्त्रियों और बच्चों के अधिकारों की रक्षा करना चाहिये। स्त्रियों को भी आपस में मेल से रहना चाहिये और कुटुंब की उन्नति के काम करना चाहिये। घर की स्वच्छता और सुंदरता उन्हीं पर बहुत कुछ निर्भर होती है। साथ ही बच्चों की देखरेख, शिष्टाचार, स्वास्थ्य और शिक्षा का प्रबंध आदि वे ही ठीक तौर से कर सकती हैं। घर के कामों से छुट्टी पाने पर उन्हें अपने परिवार की आय बढ़ाने के काम भी करना चाहिये। यह सब कर सकने तथा अपने नागरिक अधिकारों को समझने और उनका उपयोग करने के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना आवश्यक है, विशेष कर इन दिनों, जब उनका कार्यक्षेत्र पुरुषों के समान विस्तृत होता जाता है। बालक बालि-

काओं को भी माता पिता के आज्ञानुसार चलना चाहिये। इसी में उनकी भलाई है। आज्ञाकारी बच्चों से माता पिता हमेशा प्रसन्न रहते हैं और परिवार हरा-भरा तथा उन्नतिशील देख पड़ता है।

(२) कुल तथा जाति या बिरादरी—गोत्रात्मक समुदायों के अन्य उदाहरण हैं, कुल तथा जाति बिरादरी। कुटुंब में जनवृद्धि का होना स्वाभाविक है। धीरे धीरे कुटुंब के लोग इतने बढ़ जाते हैं कि उनके लिए एक ही घर में, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, और एक ही साथ, चाहे आपस में कितना ही मेल और त्याग क्यों न हो, रहना कठिन हो जाता है। इस कारण एक ही कुटुंब धीरे धीरे कई कुटुंबों में बँट जाता है। ऐसा होना सदैव जारी रहता है। इस प्रकार एक ही पूर्वज से उत्पन्न कुटुंबों के समूह को कुल (Tribe) कहते हैं। समाज में ऐसे बहुत से कुल होते हैं जिनमें व्यवसाय, रीति-रेवाज आदि की समानता होती है। इन कुलों में खान-पान और विवाह आदि का संबंध प्रचलित हो जाता है। इन एकसे व्यवसाय, रीति-रेवाज या परंपरा आदि के कुलों की एक जाति या बिरादरी बन जाती है। कालांतर में जातियों की संख्या बढ़ती है और अनेक उपजातियाँ बन जाती हैं।

कार्य-विभाजन की दृष्टि से हिंदुओं में प्राचीन काल में चार वर्ण बनाये गये थे। पूजा करनेवाले और विचारशील लोगों के वर्ग का नाम ब्राह्मण रखा गया था; समाज की रक्षा और युद्ध करनेवाले वर्ग का नाम क्षत्रिय; उत्पादन और व्यवसाय आदि करनेवाले वर्ग का नाम वैश्य और काम तथा सेवा करनेवाले वर्ग

का नाम शूद्र। क्रमशः कामों की उच्चता और नीचता के कारण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य उच्च वर्ण के समझे जाने लगे और शूद्र नीच वर्ण के। इन वर्णों के परस्पर विवाह, निवास-स्थान, काम, आदि के कारण अनेक नये वर्ग बने। उनका नाम जाति रखा गया। आजकल हिंदू-समाज ऐसी असंख्य जातियों में विभक्त है।

इस स्थान पर यह जान लेना चाहिये कि अब जाति शब्द का प्रयोग हिंदुओं में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था से अधिक व्यापक होने लगा है। किसी एक ही प्रकार की शारीरिक बनावटवाले लोगों को, चाहे वह भिन्न भिन्न देशों में भले ही रहते हों, एक ही जाति का कहा जाता है; जैसे, आर्य जाति, सेमेटिक जाति, मंगोल जाति आदि। कभी कभी देश विशेष के निवासियों या धर्म विशेष के माननेवालों के लिए भी जाति शब्द का व्यवहार होता है; जैसे अँगरेज़ जाति, जर्मन जाति, हिंदू जाति, मुसल्मान जाति आदि। राष्ट्रीयता की भावना के बढ़ने के कारण एक देश में रहनेवाले, विविध धर्मों के माननेवालों को एक ही जाति का माना जाने लगा है; जैसे भारतीय जाति, चीनी जाति, जापानी जाति आदि।

यदि जाति शब्द को इस व्यापक अर्थ में न लेकर केवल संकुचित अर्थ में लें तो उसका तात्पर्य कुटुंब से बड़ा वह जनसमूह होगा जिसमें परंपरा, व्यवसाय, रीति-रेवाज और रोटी-बेटी का संबंध हो। इसके कारण वे न तो समाज के संगठन में मनमानी कर पाते हैं और न आपस में ही। पुराने समय में ही नहीं, आजकल भी हमारे देश में बहुत सी जातियों की पंचायतें होती

हैं। वे ही जातिगत् नियमों की रक्षा करती और उनके विरुद्ध चलनेवालों को दंड देती हैं। वे ही जाति की मर्यादा बचाती हैं। बहुत जातियों का प्रमुख व्यक्ति ही, जो मुखिया कहलाता है, अपनी बिरादरी के लोगों की शुद्धता बचाने का काम करता है। इतना ही नहीं, जातीय पंचायत या मुखिया के द्वारा जाति के हित का भी साधन होता है। परंतु जाति, समाज से अलग नहीं हो सकती। इसलिए एक जाति के संचालकों या लोगों को अपने लिए कोई ऐसा काम न करना चाहिये जिससे अन्य जाति या समुदायवालों की हानि हो या उनको कष्ट हो। समाज में रहनेवाली सभी जातियों को दूसरों के हितों का ध्यान और स्वार्थों का त्याग उसी तरह करना चाहिये जिस तरह एक कुटुंब के लोग आपस में किया करते हैं।

व्यवसायात्मक समुदाय—जाति एक प्रकार का व्यवसायात्मक समुदाय है। परंतु जाति-भेद केवल हिंदुओं ही में पाया जाता है और उनमें भी आजकल उसका बंधन क्रमशः ढीला पड़ता जाता है। अतएव व्यवसाय और आर्थिक बातों के लिए समाज में कुछ नये समुदाय बन गये हैं। नीचे हम उन्हीं समुदायों का विवरण देंगे।

आरंभ में लोगों का रहन-सहन सरल था। उनकी आवश्यकताएँ कम थीं। तब यह संभव था कि एक व्यक्ति या उसका कुटुंब, अपने लिए सब आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न कर लेता हो। परंतु समाज के बढ़ने और सभ्यता के विकास के साथ साथ लोगों की रुचि और आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं। तब यह असंभव

हो गया कि सब लोग अपनी अपनी आवश्यकताओं की सभी चीज़ें पैदा कर लें या बना लें। इस कारण समाज में श्रम-विभाजन की आवश्यकता हुई। एक एक काम करनेवाले अनेक छोटे छोटे जन-समूह बन गये। आरंभ में इनकी संख्या कम थी। परंतु जन-संख्या के बढ़ने के साथ एक ही काम नहीं, उसके छोटे छोटे भागों को लेकर उन्हें ही पूरा करने में बहुत लोग लग गये। इस तरह एक एक व्यवसाय करनेवाले लोगों के अलग अलग समूह बनने लगे।

आरंभ से ही अपनी बनायी हुई वस्तु में से, अपनी आवश्यकता भर को, अपने लिए रखकर शेष दूसरे लोगों से बदलकर, उनसे अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ लेने की चाल थी। इसे विनिमय (Exchange) कहते हैं। लेकिन इस विनिमय के द्वारा अपने लिए ज़रूरी चीज़ें पाने में बहुत कठिनाइयाँ पड़ती थीं। अतएव मुद्रा या सिक्का चलाया गया। लोग अपनी बनायी वस्तु का मूल्य सिक्कों में पाकर उनसे अपनी आवश्यक वस्तुएँ ख़रीदने लगे। इस तरह लोगों को एक ही काम में लगे रहने की सुविधा हुई और समाज में विविध व्यवसाय करने वालों के अलग अलग वर्ग बन गये। रुचि, शक्ति और योग्यता के अनुसार लोग एक व्यवसाय छोड़कर दूसरा व्यवसाय भी ग्रहण करने लगे। क्रमशः इतने व्यवसाय हो गये कि भिन्न भिन्न व्यवसायवालों में कभी कभी संघर्ष भी होने लगे। एक तो इस तरह के संघर्ष से अपनी रक्षा करने के लिए और दूसरे अपनी उन्नति करने के लिए भी, हर पेशे के लोग

अपना अपना संघ बनाने लगे। इसी लिए आजकल प्रायः सब देशों में किसानों, ज़मींदारों, मज़दूरों, पूँजीपतियों, रेल, डाक, जहाज़ आदि में काम करनेवालों, डाक्टरों, वकीलों, व्यापारियों, अध्यापकों, छात्रों आदि के संघ बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। ये संघ स्थानीय विषयों और संप्रदायों से संबंध रखते हैं। इनमें से बहुत से ऐसे भी हैं, जिनका कार्य-क्षेत्र एक सूबा या देश होता है। कुछ एक तो अंतर्राष्ट्रीय होते हैं और उनका कार्यक्षेत्र अनेक देशों में व्याप्त होता है। इन सबका उद्देश्य, अन्य समुदायों की भाँति, अपने सदस्यों की रक्षा और उन्नति करना होता है। परंतु आर्थिक दृष्टि से व्यक्ति वा व्यावसायिक समुदाय की उन्नति का यह अर्थ नहीं है कि एक व्यक्ति या वर्ग अपनी उन्नति करने के ऐसे प्रयत्न करे जिनसे दूसरों की अवनति हो या उनकी उन्नति में रुकावट हो। यदि ऐसा हुआ तो दो समूहों में झगड़ा होना अनिवार्य है। इससे समाज की उन्नति में बाधा पहुँचने की आशंका है। इसलिए आर्थिक कार्यों में भी स्वार्थ के साथ ही दूसरों के लाभ और हित का ध्यान रखना आवश्यक है। विशेषकर जो व्यावसायिक समुदाय ऐसे हों जिनको एक दूसरे से काम पड़ता हो और जो एक दूसरे पर निर्भर हों उनको तो यह बात कभी न भूलना चाहिये। इसी लिए मज़दूरों के समुदायों को अपनी सुविधा, वेतन-वृद्धि आदि के साथ ही, पूँजी-पतियों के लाभ का भी ध्यान रखना आवश्यक है। पूँजी-पतियों को भी चाहिये कि वे मज़दूरों के द्वारा हर प्रकार से अपने ही लाभ का ख़याल न रखें, बल्कि उनके सुख और समृद्धि

की भी व्यवस्था करें, उनके कष्ट दूर करें और उनसे उदारता का व्यवहार करें। इसी तरह् अपनी आय बढ़ाना ही किसी व्यवसायी का लक्ष्य न होना चाहिये। उसे ऐसी वस्तु बनाना या बेचना चाहिये जिससे ख़रीदनेवाले को धन, स्वास्थ्य आदि की हानि न हो। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि उसका कोई भी काम ऐसा न हो जिससे समाज को हानि पहुँचे।

धार्मिक समुदाय—व्यवसाय के कारण बननेवाले उक्त समुदायों और संघों के अतिरिक्त कुछ और कारण भी हैं जिनसे मनुष्य-समाज में समुदाय बनते हैं। इनमें से एक प्रधान कारण धार्मिक भावना है। संसार में अधिकांश लोग, इसके सभी कार्यों के संचालन करनेवाली परोक्ष सत्ता को मानते हैं। उसे अपनी अपनी भाषा में वे ईश्वर, ख़ुदा, गॉड या अन्य नाम देते हैं। सभी धर्मों का मूल उद्देश्य, इस लोक के जीवन के पश्चात्, परलोक में आनंद और शांति का मार्ग बतलाना होता है। इस एकता के होते हुए भी, रुचि और स्वभाव की विषमता, परंपरा और स्थिति की भिन्नता आदि के कारण उनमें संस्कार, विधि-निषेध, उपासना के ढँग इत्यादि में भेद होता है। इसलिए एक ही धार्मिक विचारवाले लोगों के समुदाय में मित्रता, प्रेम, त्याग आदि सद्वृत्तियाँ होती हैं, पर जब वे दूसरे धर्म के माननेवालों के संपर्क में आते हैं तब अनुदार हो जाते हैं। इसी से पुराने समय में प्रायः सभी देशों में धर्म के नाम पर भयंकर संहार हुआ है और आज भी, कम से कम हमारे देश में, आये दिन झगड़ों और दंगों से समाज को

धन और जन की हानि सहनी पड़ती है। आजकल संसार में कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसमें विविध धर्मों के अनुयायी एक साथ न रहते हों। उनको एक दूसरे से अलग करना अब संभव नहीं। अतः धर्म को अब व्यक्तिगत् विचार समझा जाने लगा है। उसे मानने और उसके अनुसार व्यवहार करने की स्वतंत्रता सबको रहती है। किसी को यह अधिकार नहीं कि अपने धर्म के नाम पर किये गये कामों से वह दूसरों का जी दुखी करे या दूसरों को उनके धर्म के अनुसार आचरण करने से रोके। संभव है दूसरे धर्म की बातें उसे पसंद न हों, परंतु अब वह समय बीत गया है जब इसके कारण विधर्मी का बध करना अच्छा काम समझा जाता था। धर्मांध लोगों में, जिनको नागरिक जीवन की महत्ता का अच्छी तरह ज्ञान नहीं हुआ है अथवा जो आधुनिक दृष्टि से पूर्णतया सभ्य नहीं हैं, भले ही अब भी कहीं कहीं ऐसा करना अनुचित न माना जाता हो, लेकिन सभ्य देशों में सर्वत्र सामाजिक उन्नति के लिए धर्म-संबंधी उदारता और सहिष्णुता को प्रधानता दी जाती है। आचारों में विषमता भले ही हो, पर मूल में सभी धर्मों में सत्य, अहिंसा, त्याग, उदारता, प्रेम, आदि मनुष्य के उच्च गुणों पर जोर दिया गया है। इसलिए धर्म के कारण बने हुए पंथों, संप्रदायों, वर्गों आदि को भी समाज की शांति, व्यवस्था और उन्नति में सहायता पहुँचानी चाहिये। हमारे देश में हिंदुओं की संख्या अधिक है। उनमें अनेक धार्मिक संप्रदाय हैं। हिंदुओं के अतिरिक्त मुसल्मान, ईसाई, पारसी, सिक्ख आदि अनेक [illegible]

के माननेवाले यहाँ रहते हैं। उनमें भी कई में बहुत से फिरक़े हैं। इन सब धार्मिक समुदायों को अपने आचारों और व्यवहारों को ही सब कुछ न समझना चाहिये; बल्कि सब धर्मों के मूल में स्थित एकता को देखने की चेष्टा करना चाहिये। ऐसा करने पर ही वे समाज और देश का हित कर सकेंगे।

शिक्षा, ज्ञान, स्वास्थ्य, विनोद के तथा दूसरे समुदाय— जैसे व्यवसाय और धर्म की एकता के कारण समाज में छोटे-बड़े समुदाय बनते हैं वैसे ही अन्य कई दृष्टियों से भी उद्देश्य और कार्य की एकता होने से समुदायों का निर्माण होता है। इनमें से कुछ समुदाय निम्नलिखित हैं—

शिक्षा और ज्ञान के समुदाय—समाज की व्यवस्था और उन्नति के लिए लोगों में शिक्षा और ज्ञान का प्रचार अत्यंत आवश्यक होता है। इसके निमित्त समाज में अनेक समुदाय होते हैं। वे पाठशाला, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, साहित्य और विज्ञान की सभा, वाद-विवाद-समिति, पुरानी वस्तुओं के संग्रहालय, पुस्तकालय, वाचनालय, व्याख्यान-मंदिर, खोज के मंडल आदि संस्थाएँ चलाते हैं। इन संस्थाओं का क्षेत्र प्रायः किसी स्थान विशेष तक ही परिमित होता है। किंतु बहुधा ये समस्त देश अथवा कई देशों तक विस्तृत होती हैं। इन संस्थाओं का सच्चा उपयोग तभी होता है, जब वर्ण, धर्म आदि की संकीर्णता से परे, सभी लोग इनसे लाभ उठा सकें और इनमें गुटबंदी या पक्षपात का दोष न हो।

स्वास्थ्य और विनोद के समुदाय—मनुष्य निरंतर काम में

नहीं लगा रह सकता। काम करने से उसका शरीर और मस्तिष्क थक जाता है। थकावट दूर करके नयी शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त किये बिना वह स्वस्थ नहीं रह सकता। यदि वह स्वस्थ न रहा तो उसकी उन्नति के रुक जाने का भय है। इसलिए थकावट को दूर करने के लिए अखाड़े, व्यायाम-मंडल और खेल-कूद के क्लब आदि के रूप में अनेक समुदाय होते हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए मन-बहलाव भी बहुत ज़रूरी है। इसके लिए नाटक-समाज, संगीत-समाज, आदि अनेक प्रकार के समुदाय होते हैं। मनोरंजन के समुदायों की ऐसी बातें सामाजिक उन्नति के लिए घातक होती हैं जिनसे कुविचार उत्पन्न होते हैं और पाशविक वृत्ति की तृप्ति होती है। इससे इन समुदायों में मन को प्रसन्न करने के लिए अच्छी बातें और अच्छे काम होना चाहिये।

लोक-सेवा के समुदाय—प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति भर दूसरों की सेवा करे। उसे अपने आपको बिल्कुल भुला न देना चाहिये, पर समाज की सेवा के लिए उसे उतना ही तैयार रहना चाहिये जितना अपनी भलाई के लिए। लोक-सेवा के लिए समाज में अनेक स्थायी समुदाय होते हैं, जैसे सेवा-समिति, ब्वाय-स्काउट और गर्ल-गाइड आंदोलन आदि। ये रोगियों के लिए धर्मार्थ औषधालय और चिकित्सा-भवन खोलते, अनाथों के विश्राम और कार्य के लिए आश्रम स्थापित करते, भूले-भटकों को राह लगाने की संस्थाएँ बनाते या समाज-सेवा के लिए अन्य मार्ग ग्रहण करते हैं। कभी कभी किसी विशेष जन-समुदाय

पर अकस्मात् ऐसी विपत्ति आ पड़ती है कि लोक-सेवा के स्थायी समुदाय उसके निवारण का समस्त भार नहीं ले सकते; जैसे बाढ़, अकाल, भूकंप, प्लेग, हैज़ा आदि संक्रामक बीमारियों का प्रकोप। ऐसे अवसरों पर लोक-सेवा के नये अस्थायी समुदाय बन जाते हैं। जैसे, कुछ वर्ष पूर्व बिहार और क्वेटा के भूचाल के कष्ट निवारण के लिए भारत-सरकार और कांग्रेस दोनों ने अपनी अपनी समितियाँ स्थापित की थीं। लोक-सेवा के समुदायों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उनके कार्यकर्ता स्वार्थ का पूर्ण त्याग करके सच्ची लगन से काम करें।

अभ्यास

(१) समुदाय किसे कहते हैं ? समुदाय और समाज में क्या अंतर है ?

(२) "कुटुंब सामाजिक एवं नागरिक जीवन की पहली पाठशाला है" इस वाक्य की व्याख्या कीजिये।

(३) कुटुंब, कुल और जाति का भेद समझाइये।

(४) समुदाय कितने प्रकार के होते हैं ? किसी लोक-सेवा-संबंधी समुदाय के उद्देश्यों का वर्णन लिखिये।

चौथा अध्याय

नागरिक और समुदाय (२)

प्रदेशात्मक समुदाय

प्रदेशात्मक समुदाय—गाँव—हमारे गाँवों की दशा—नगर—ज़िला—प्रांत—देश—साम्राज्य—संसार ।

प्रदेशात्मक समुदाय—तीसरे अध्याय में हमने जिन समुदायों का विवरण लिखा है उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसका संबंध किसी प्रदेश से न हो। कुटुंब, कुल, जाति, संघ, सेवा-समिति आदि सभी समुदाय किसी न किसी क्षेत्र में ही अपना काम किया करते हैं। परंतु इनके निर्माण में प्रदेश की प्रधानता नहीं होती। प्रदेश की प्रधानता की दृष्टि से भी मनुष्य ने अनेक समुदाय बनाये हैं। जैसे, गाँव, नगर, ज़िला, प्रांत, देश और संसार। नीचे इन समुदायों का वर्णन किया जायगा।

गाँव (Village)—हम देख चुके हैं कि एक ही स्त्री-पुरुष की संतति एक साथ मिलकर रहने के लिए स्वभाव से प्रेरित होती है और उन सब का एक कुटुंब या परिवार बन जाता है। क्रमशः ऐसे अनेक कुटुंब एक ही स्थान में बस जाते हैं। वहाँ वे खेती करके अपना पेट पालते हैं और पहनने के लिए कपड़े और रहने के लिए मकान बनाते हैं। कुटुंबों के ऐसे समूह को गाँव कहते हैं।

आरंभ में प्रायः सभी देशों के निवासी गाँवों में रहते थे। वहीं उनकी आवश्यकताओं की वस्तुएँ भी मिलती थीं। भारतवर्ष के लगभग ८० प्रतिशत् निवासी आज भी गाँवों में रहते हैं। अन्य देशों की भाँति यहाँ की देहाती जन-संख्या वेग से कम नहीं हो रही है। इसके चार मुख्य कारण हैं—

(१) समतल और उपजाऊ भूमि की अधिकता,

(२) पानी की सुलभता,

(३) खेती के अतिरिक्त अन्य पेशों का अभाव और

(४) भारतवासियों की निर्धनता।

हमारे गाँवों की दशा—पुराने समय में हमारे गाँव बहुत सी बातों के लिए स्वतंत्र थे। उनकी सारी व्यवस्था वहीं के लोग कर लिया करते थे। उनकी पंचायतें होती थीं। वे गाँव के सभी मामलों की देख-भाल, सफ़ाई का प्रबंध, स्वास्थ्य-रक्षा, झगड़ों का निबटारा आदि किया करती थीं। वे ही गाँव के हितों का ध्यान रखती थीं। गाँव में सामाजिक और धार्मिक जीवन की उचित व्यवस्था भी पंचायतें करती थीं। इस तरह गाँव के लोग सुख और प्रेम से रहते थे। परंतु यह दशा बहुत दिनों से बिगड़ गयी है। लोगों में आपसी झगड़ों और वैमनस्य ने घर कर लिया है। उनकी आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं रह गयी है। उनमें सादगी और मितव्ययता का लोप हो गया है और दिखाऊ बातें आने लगी हैं। इसका असर बहुत बुरा हुआ है। इसे दूर करने, गाँवों को सुधारने और वहाँ के लोगों को उत्तम नागरिक बनाने

का प्रयत्न करना प्रत्येक देश-प्रेमी का कर्तव्य है; क्योंकि उनकी उन्नति और सुधार में ही हमारे देश की सच्ची उन्नति है। इधर हमारी सरकार का ध्यान इस ओर गया है। भारतीय कांग्रेस भी उनके सुधारने में लगी है। इनके द्वारा होनेवाले प्रयत्नों में प्रत्येक नागरिक को योग देना चाहिये। साथ ही गाँव के रहनेवालों को भी चेतना चाहिये। एक दूसरे को एक बड़े कुटुंब का सदस्य सा समझकर उन्हें स्वार्थ में लिप्त रहना छोड़ना चाहिये और ऐसे काम करना चाहिये जिनसे समूचे गाँव की दशा सुधरे। उन्हें झगड़े आपस में ही निबटा लेना चाहिये, व्यर्थ के ख़र्च और आडंबर से बचना चाहिये, गाँव की स्वच्छता और स्वास्थ्य की रक्षा करना चाहिये और इस प्रकार अपना जीवन आनंदमय बनाना चाहिये। इस तरह स्वयं प्रयत्न करके तथा सरकार और अन्य लोगों के उद्योग से सहयोग करके गाँववाले जब तक स्वयं अपनी हालत सुधारने में न लगेंगे तब तक गाँवों की सच्ची उन्नति न हो सकेगी।

नगर (Town)——गाँवों के अतिरिक्त हमारे देश के बहुत से निवासी क़स्बों और नगरों में रहते हैं। जब गाँव का क्षेत्रफल और जनसंख्या दोनों बढ़ जाती हैं तब उसे क़स्बा कहते हैं। बहुत बड़े क़स्बे को नगर कहा जाता है। नगरों की उत्पत्ति बहुधा व्यापारिक कारणों से होती है। जिन स्थानों में आने-जाने के साधन सुगम होते हैं, जो खेती या कारीगरी की चीज़ों के केंद्र में होते हैं, उनमें धीरे धीरे बहुत से लोग रहने लगते हैं। समय पाकर वे स्थान नगर हो जाते हैं। ऐसे ही धर्म की दृष्टि से पवित्र

स्थान भी बढ़ते बढ़ते नगर हो जाते हैं। नगरों में लोगों का मुख्य व्यवसाय उद्योग-धंधा या कला-कौशल होता है। इस कारण वहाँ भिन्न भिन्न पेशे, व्यवसाय और काम करनेवाले लोगों की अधिकता के कारण, गाँव के लोगों का सा भाईचारा और घनिष्ठ संबंध नहीं रह सकता। नगर-निवासियों के काम और व्यवसाय का संबंध प्रायः अपने ही नगर तक सीमित नहीं रहता। वह संपूर्ण देश ही नहीं, बहुधा विदेशों तक व्यापक हो जाता है। इतने विस्तृत संबंध के होने से नगरों में रहनेवालों का जीवन गाँवों में रहनेवालों की अपेक्षा विविधता से पूर्ण होता है। उनको रहन-सहन, खान-पान और व्यवहार की सभी वस्तुएँ अच्छी मिलती हैं। उनको तड़क-भड़क और दिखावा अधिक पसंद होता है। नगरों में ही विद्या तथा ज्ञान और मनोरंजन के साधन--विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय, अद्भुत वस्तुओं के संग्रहालय तथा नाटक, सिनेमा-घर आदि होते हैं। नगरों की व्यवस्था और शांति के लिए, गाँवों की अपेक्षा अधिक प्रबंध की आवश्यकता होती है। उनके निवासियों का अपने तथा देश के प्रति दायित्व भी अधिक होता है।

ज़िला (District)—बहुत से गाँव, क़स्बे और एक या अधिक नगर शासन के लिए एक क्षेत्र के अंतर्गत मान लिये जाते हैं। इस क्षेत्र को ज़िला कहते हैं। ज़िला का नाम बहुधा उसके प्रधान नगर के नाम पर रखा जाता है। उसी नगर में ज़िले के प्रधान सरकारी अधिकारी, उनके कार्यालय और कर्मचारी

एवं व्यवस्था करनेवाले अन्य लोगों के दफ़्तर होते हैं। ज़िले का प्रधान अधिकारी हमारे देश में कहीं पर 'डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट' तथा 'कलक्टर' कहा जाता है और कहीं पर 'डिप्टी कमिश्नर'। यह ज़िले के किसानों, ज़मींदारों आदि से मालगुज़ारी और दूसरे कर वसूल करता और ज़िले की शांति और व्यवस्था का प्रबंध करता है।

इधर जब से प्रजा को शासन-संबंधी अधिकार मिलने लगे हैं तब से हमारे यहाँ क़स्बे का आंतरिक प्रबंध करने के लिए 'टाउन एरिया कमेटी' नगर का प्रबंध करने के लिए 'म्युनिसिपल बोर्ड' और ज़िले का प्रबंध करने के लिए 'ज़िला बोर्ड' होते हैं। उनमें जनता के चुने हुए लोग प्रांतीय सरकार के निरीक्षण में भीतरी प्रबंध करते हैं। कुछ बड़े बड़े नगरों की व्यवस्था करनेवाली संस्था 'कॉरपोरेशन' कहलाती है। इन संस्थाओं के संगठन, अधिकार और काम आदि का वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ पर इतना जान लेना उचित है कि इनके लिए केवल जनता के हित को ध्यान में रखनेवाले तथा व्यक्तिगत्, या जाति, धर्म आदि के स्वार्थ से रहित लोगों को प्रतिनिधि बनना और बनाना चाहिये।

प्रांत (Province)—बहुत से ज़िलों के समूह को प्रांत कहते हैं। प्रांत का सबसे बड़ा अधिकारी हमारे देश में 'गवर्नर' कहलाता है। कुछ प्रांतों में उसे 'चीफ़ कमिश्नर' भी कहते हैं। हमारे देश में सभी प्रांतों का क्षेत्रफल समान नहीं है। ब्रिटिश

साम्राज्य की वृद्धि के साथ साथ वे शासन के सुभीते के कारण समय समय पर बनाये गये हैं। इन प्रांतों की शासन-प्रणाली में क्रमशः परिवर्तन होता गया है। इसका संक्षिप्त तथा आजकल की पद्धति का कुछ अधिक हाल आगे बतलाया जायगा। इस समय केवल यह जानते चलना चाहिये कि प्रांत के आंतरिक शासन के नियम बनाने का अधिकतर अधिकार अब जनता के हाथ में आ गया है। उसके ही प्रतिनिधि नियम बनाते हैं। उसी के प्रमुख लोग मंत्रिमंडल बनाकर गवर्नर की देख-रेख में प्रांत का शासन करते हैं। प्रांतीय शासन के लिए अनेक विभाग और उनके अगणित कर्मचारी होते हैं। ये लोग प्रांत के सच्चे सेवक और हितैषी तभी हो सकते हैं, जब व्यक्ति, जाति, धर्म, समुदाय आदि के संकुचित विचार इन्हें दूषित न कर पावें। समष्टि-रूप से प्रांत का हित जिनके लिए सब कुछ है और जिनमें पद के अनुरूप शिक्षा और दूसरी विशेषताएँ हैं उन्हीं को इस कार्य के योग्य समझना चाहिये। जनता के इन प्रतिनिधियों और सरकारी कर्मचारियों के प्रति नागरिकों के समान दायित्व और कर्तव्यों का होना आवश्यक है।

देश (Country)—प्रांतों के उस समूह को जो एक शासन-सूत्र में बँधा होता है, देश कहते हैं। देश की कल्पना में शासन की एकता परमावश्यक है। भाषा, रीति-रेवाज, धर्म, आर्थिक हित और दूसरे स्वार्थों का बंधन देश में होता है। इन बातों में प्रांतों की स्थानिक अवस्था भले ही कुछ भिन्न हो, पर मुख्य बातों

में उन सब का एकसा उद्देश्य होता है। इसी लिए वे अपने को एक ही शरीर के विविध अंग समझते हैं और संपूर्ण देश की उन्नति को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं। भारतवर्ष एक देश है। अनेक प्रांतों और देशी रियासतों में विभक्त होने पर भी सारे भारतवर्ष का एक सर्वोच्च शासक है, जिसे 'गवर्नर जनरल' और 'वाइसराय' कहते हैं। यही पदाधिकारी ब्रिटिश सरकार के निरीक्षण में भारतीय शासन की देखभाल करता है। इसी प्रकार इँगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान आदि भी भिन्न भिन्न देश हैं।

साम्राज्य (Empire)—देशों के उस समूह को जो एक सम्राट् के अधीन होता है, साम्राज्य कहते हैं; जैसे ब्रिटिश साम्राज्य। इसमें भारतवर्ष के अतिरिक्त केनाडा, आॅस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूज़ीलैंड आदि अनेक देश शामिल हैं। ये सब देश इँगलैंड के राजा को अपना सम्राट् मानते हैं। साम्राज्य स्थापित करने का साधारण तरीक़ा लड़ाई और विजय है। साम्राज्य के प्रत्येक देश के निवासियों को समान अधिकार नहीं होते। चूँकि साम्राज्य में एक देश का दूसरे देश अथवा देशों पर शासन होता है इसलिए पराजित देशों को विजयी देश के हित का साधन, अपनी हानि होने पर भी करना पड़ता है।

संसार (World)—प्रदेशात्मक समुदायों में संसार सबसे बड़ा समुदाय है। अभी तक समस्त संसार की एक सरकार स्थापित नहीं हो पायी है। पर वैज्ञानिक उन्नति के कारण सारा संसार एक सूत्र में बँध गया है। भिन्न भिन्न देश अब एक दूसरे पर

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत अधिक निर्भर हो गये हैं। भारतवर्ष के अकाल के कारण इँगलैंड में अनाज का दाम बढ़ जाता है और जापान के भूचाल का प्रभाव समस्त संसार पर पड़ता है। भिन्न भिन्न देश अब अकस्मात् विपत्तियों में एक दूसरे की सहायता भी करने लगे हैं। फिर भी अभी तक मनुष्य अपनी पाशविक वृत्ति पर पूर्ण विजय नहीं पा सका है। इसी लिए संसार के भिन्न भिन्न देशों में कभी कभी युद्ध छिड़ जाता है। उसमें करोड़ों की संपत्ति नष्ट हो जाती है, और लाखों मनुष्य व्यर्थ ही मृत्यु की भेंट हो जाते हैं। संभव है भविष्य में मनुष्य अपनी पाशविक वृत्ति पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ले। तब इन अनावश्यक युद्धों का अंत हो जायगा और मनुष्य अपने जीवन को संसार का नागरिक बनकर व्यतीत कर सकेगा।

अभ्यास

(१) गाँव, नगर और जिले में क्या अंतर है ?
(२) देश और साम्राज्य में क्या अंतर है ?

पाँचवाँ अध्याय

नागरिक और समुदाय (३)

राजनीतिक समुदाय

राजनीतिक समुदाय—राज्य—राज्य और अन्य समुदायों का संबंध—राज्य, सरकार और राष्ट्र—राज्य की उत्पत्ति—राज्य और नागरिक का संबंध—मानवता और नागरिक—राष्ट्र-संघ—सांस्कृतिक जीवन।

राजनीतिक समुदाय (Political Associations)—पिछले दो अध्यायों में हम समाज के गोत्रात्मक, प्रदेशात्मक, व्यवसायात्मक, धार्मिक तथा लोक-सेवा और शिक्षा-संबंधी समुदायों का विवेचन कर चुके हैं। ये सब समुदाय महत्वपूर्ण हैं, इसमें संदेह नहीं। परंतु इनकी महत्ता उतनी नहीं है जितनी राजनीतिक समुदायों की। आजकल संसार में व्यवसायात्मक और राजनीतिक समुदायों की ही प्रधानता है। अतएव इस अध्याय में हम राज्य, सरकार, राष्ट्र और राष्ट्र-संघ आदि राजनीतिक समुदायों पर प्रकाश डालेंगे।

राज्य (State)—राजनीतिक समुदायों में राज्य का स्थान बड़े महत्व का है। इसकी कल्पना में चार बातों का होना आवश्यक है—(१) भूमि-भाग अथवा देश (Territory), (२) जनसंख्या (Population), (३) संगठन (Organisation) और (४) स्वतंत्रता (Unity)। किसी राज्य में कितना भूमि-भाग हो, इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। रूस और चीन का क्षेत्रफल

इँगलैंड और जापान के क्षेत्रफल से कई गुना अधिक है। राज्य की जनसंख्या के विषय में भी कोई निश्चित नियम नहीं है। कुछ राज्यों की जनसंख्या बहुत कम होती है और कुछ की बहुत ज्यादा। पर सब राज्यों के निवासी संगठित अवश्य होते हैं। उनमें कुछ तो शासक होते हैं और कुछ शासित। शासितों को शासकों के आज्ञानुसार चलना पड़ता है। राज्य की कल्पना में स्वतंत्रता का स्थान बड़े महत्व का है। इसके बिना भूमि-भाग, जनसंख्या और संगठन होने पर भी राज्य का बनना असंभव है। कोई राजनीतिक समुदाय, जो एक बड़े राजनीतिक समुदाय के अधीन है, राज्य नहीं कहा जा सकता। इँगलैंड राज्य है, किंतु भारतवर्ष नहीं, क्योंकि भारतवर्ष इँगलैंड के अधीन है।

राज्य और अन्य समुदायों का संबंध—यद्यपि राज्य और अन्य समुदायों में कई बातें एकसी होती हैं, तो भी राज्य में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो अन्य समुदायों में नहीं पायी जातीं। अन्य समुदायों का सदस्य होना या न होना मनुष्य की इच्छा पर निर्भर होता है। परंतु किसी राज्य का सदस्य होना उसके लिए अनिवार्य है। उसको राज्य की आज्ञा माननी पड़ती है। यदि वह राज्य की आज्ञा या नियम के विरुद्ध चलता है तो दंड पाता है। राज्य मनुष्य को प्राणदंड तक दे सकता है। अन्य समुदायों का अपने सदस्यों पर ऐसा अधिकार नहीं होता। राज्य के अधिकार एक भौगोलिक सीमा तक परिमित होते हैं, किंतु अन्य समुदाय संसार-व्यापी हो सकते हैं। आजकल भिन्न भिन्न व्यवसायवाले अपने

अपने संसार-व्यापी समुदाय बनाने में लगे हैं। मज़दूरों, विद्यार्थियों अध्यापकों आदि के संसार-व्यापी समुदाय बन भी चुके हैं। अधिक विस्तृत क्षेत्र होने पर भी अन्य समुदाय राज्य के अधीन होते हैं। उन्हें राज्य की प्रभुता माननी पड़ती है। राज्य उनको दंड दे सकता है, लेकिन वे राज्य के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते।

राज्य, सरकार और राष्ट्र—राज्य शब्द का ठीक ठीक अर्थ जानने के लिए राज्य (State), सरकार (Government) और राष्ट्र (Nation) का अंतर समझना आवश्यक है। राज्य शब्द की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। उसके अनुसार हम राज्य की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं—किसी भूमि-भाग में रहनेवाले उस जन-समूह को राज्य कहते हैं जो संगठित हो और जो किसी दूसरे राजनीतिक समुदाय के अधीन न हो। प्रत्येक राज्य की अलग अलग सरकार होती है। सरकार शब्द का अर्थ है, वह जन-समूह जिसको स्थायी अथवा अस्थायी रूप से राज्य का शासनाधिकार सौंप दिया जाता है। जैसे, 'संयुक्त प्रांतीय सरकार' सामूहिक नाम है, गवर्नर, मंत्रि-मंडल और उनके सहायकों का। राष्ट्र उस जन-समूह को कहते हैं, जिसमें भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति, स्वार्थ आदि की एकता हो और जो स्वतंत्र हो गया हो या स्वतंत्र होने का प्रयत्न कर रहा हो। कभी कभी राष्ट्र और राज्य शब्द एक दूसरे के स्थान में इस्तेमाल कर दिये जाते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि बहुत से राष्ट्र अब राज्य हो गये हैं। फिर भी कुछ ऐसे जन-समूह हैं जो राष्ट्र तो हैं लेकिन

राज्य नहीं। भारतीय राष्ट्र के होने में किसी को आपत्ति नहीं, परंतु जब तक भारतवर्ष स्वाधीन न हो जाय, वह राज्य नहीं कहा जा सकता।

राज्य की उत्पत्ति—राज्य की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। प्राचीन काल में कुछ लोग कहते थे कि शक्ति अथवा बल (Force) से ही राज्य बन सके हैं। कुछ लोगों का कहना था कि राज्य को ईश्वर ने स्वयं बनाया (Divine Origin) है। निरंकुश राजाओं की शक्ति कम करने के लिए कुछ लोगों का कहना था कि राज्य की उत्पत्ति इक़रारनामे (Contract) से हुई है। पहले मनुष्य प्राकृतिक अवस्था में रहता था। उसमें सब लोग मनमाना काम कर सकते थे। किंतु उन दिनों सबल तो मज़े में थे, पर निर्बल हमेशा चिंता में पड़े रहते थे। इसी कारण सब लोगों ने मिलकर अपनी प्राकृतिक स्वाधीनता का परित्याग किया और राज्य की स्थापना की। सब लोगों ने मिलकर अपना एक शासक नियुक्त किया और उसे अपने अधीन शासनाधिकार दिये। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में इस सिद्धांत का बड़ा प्रभाव था। इसके कारण निरंकुश शासकों की शक्ति कम हुई थी और लोकतंत्र का ज़ोर बढ़ा था। पर राज्य की उत्पत्ति का यह सिद्धांत उतना ही ग़लत है जितना अन्य दो सिद्धांत। वास्तव में समाज की भाँति राज्य का भी विकास हुआ है। विकासवादी सिद्धांत (Evolutionary Theory) ही राज्य की उत्पत्ति का सच्चा सिद्धांत है।

राज्य और नागरिक का संबंध—राज्य और नागरिक के संबंध के विषय में प्राचीन यूनानी कहते थे कि राज्य साध्य (End) है और व्यक्ति राज्य के उद्देश्य की पूर्ति का साधन (Means) है। अतएव उनका समस्त जीवन राज्य के अधीन था। उन्हें राज्य की आज्ञा के अनुसार चलना पड़ता था। राज्य के लिए प्राण तक दे देने में उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति न होती थी। नागरिकों को बचपन से ही इस आशय की शिक्षा दी जाती थी। दूसरे विद्वानों का मत है कि अन्य समुदायों की भाँति राज्य भी एक समुदाय है और इसके अस्तित्व का निश्चित उद्देश्य है। यह उद्देश्य नागरिकों के जीवन को सुखमय बनाना है। अतएव नागरिक साध्य है और राज्य नागरिक के उद्देश्य की पूर्ति का साधन है।

उपर्युक्त दोनों विचार भ्रमपूर्ण हैं। राज्य और नागरिक के उद्देश्यों में विरोध नहीं, एकता है। दोनों एक दूसरे के लिए उपयोगी और आवश्यक हैं। दोनों के एक दूसरे के प्रति कर्तव्य हैं। राज्य को चाहिये कि वह अपने नागरिकों की उन्नति का हर प्रकार से प्रयत्न करे; उनके स्वास्थ्य, शिक्षा—समृद्धि और सुख को उत्पन्न करने और बढ़ानेवाले उपाय करे; देश के भीतर सब प्रकार से शांति रखे; दुष्टों, आततायियों आदि पर शासन करे और बाहर के आक्रमणों से लोगों को बचावे। दूसरे शब्दों में, नागरिकों का सुख और उत्थान ही राज्य का प्रधान उद्देश्य होना चाहिये। उसे ऐसे काम करना चाहिये जिससे नागरिकों का शारीरिक, मानसिक

तथा आर्थिक सब प्रकार का विकास और संपूर्ण देश का हर प्रकार से लाभ हो। राज्य से उक्त व्यवहार की आशा रखनेवाले नागरिकों को भी उचित है कि वे राज्य से प्रेम रखें, उसके उन कामों का विरोध न करें जिनसे उनका हित होता हो और आपत्ति के समय राज्य की धन, जन आदि से पूरी सहायता करें। इतना ही नहीं, राज्य के बनाये हुए नियमों (क़ानूनों) का पालन करके वे देश की भीतरी व्यवस्था में राज्य को योग दें और राज्य द्वारा किये जानेवाले लोकहित के कामों में सहायता पहुँचावें। इस तरह से राज्य और नागरिक जब एक दूसरे का साथ देंगे तभी दोनों का कल्याण होगा।

मानवता और नागरिक—राज्य और राष्ट्र से भी व्यापक संबंध मनुष्य का मनुष्य जाति से है। किसी देश की भौगोलिक सीमा उसे राज्य अवश्य बनाती है और प्रत्येक राज्य का एक राष्ट्र बन जाता है। परंतु राज्य-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम मनुष्य को अन्य राज्यों और राष्ट्रों के सदस्यों का विरोधी न बना दे, यह नागरिकता का प्रधान लक्ष्य होना चाहिये। राष्ट्रीय उन्नति, अंतर्राष्ट्रीय उन्नति में बाधक न होकर सहायक हो, यही मनुष्य का कर्तव्य है। इसका सम्यक् ज्ञान होने पर ही संसार में, देश के नाम पर जो ख़ून-ख़राबी, अपहरण, युद्ध और अत्याचार होते हैं वे मिट सकेंगे। तभी मानव जाति अपने को पशु से भिन्न और वास्तव में ऊँचा सिद्ध कर पायेगी। संसार के सभी देशों में समय समय पर त्यागी, महात्मा और साधु उत्पन्न होकर यह मानव-प्रेम सिखाते हैं।

यद्यपि इस आदर्श का पूरा हो सकना आसान नहीं, फिर भी इसके प्राप्त करने की कोशिश करना संसार के सभी राज्यों के नागरिकों का कर्तव्य है।

राष्ट्र-संघ—राष्ट्र-संघ आजकल संसार का सब से बड़ा राजनीतिक समुदाय है। युरोपीय महायुद्ध में राज्यों की परस्पर लड़ाई के कारण, अकारण ही लाखों मनुष्य मारे गये थे और करोड़ों की संपत्ति नष्ट हुई थी। वैज्ञानिक उन्नति के कारण, संहारक अस्त्र-शस्त्र अब इतने भयानक हो गये हैं कि दूसरे महासमर में, कहीं वैज्ञानिक उन्नति स्वयं ही मनुष्य को न खा ले, इस बात का सभी विचारशील मनुष्यों को भय है। अतएव महासमर के पश्चात् सन् १९२० में, संसार के अधिकांश राज्यों ने मिलकर राष्ट्र-संघ की स्थापना की है। भारतवर्ष भी इसका सदस्य है। इसका उद्देश्य है अंतर्राष्ट्रीय युद्धों का अंत करना और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का बढ़ाना। राष्ट्र-संघ का काम चलाने के लिए उसकी दो संस्थाएँ, असेंबली और कौंसिल नाम की बनायी गयी हैं। असेंबली में प्रत्येक सदस्य-राज्य के अधिक से अधिक तीन प्रतिनिधि होते हैं। इसका साल में एक अधिवेशन अवश्य होता है। असेंबली की अनुपस्थिति में राष्ट्र-संघ का काम कौंसिल द्वारा किया जाता है। आजकल लगभग १४ राज्य कौंसिल के सदस्य हैं। छोटी होने के कारण कौंसिल की बैठकें आवश्यकतानुसार की जा सकती हैं। राष्ट्र-संघ की एक अदालत भी है। वह अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को निबटाती है।

राष्ट्र-संघ, अंतर्राष्ट्रीय जगत की कई गुत्थियों को सुलझा सका है, इसमें संदेह नहीं। फिर भी उसके उद्देश्य की महत्ता को देखते हुए अभी तक उसकी सफलता बहुत कम हुई है। राष्ट्र-संघ के होते हुए भी इटली ने अबीसीनिया को हड़प लिया और जापान चीन को हड़पने की कोशिश कर रहा है। राष्ट्र-संघ की शक्ति का बढ़ाना प्रत्येक नागरिक का धर्म है। वह मानव-मात्र की संस्था है। अतएव प्रत्येक नागरिक को चाहिये कि वह मानव-प्रेम को देश-प्रेम से उच्चतर समझकर, इस संस्था को अपनावे और इसकी सफलता में सहायक हो।

ांस्कृतिक जीवन—सामाजिक संगठन की पुष्टि और वृद्धि के लिए उसके अंगरूपी समुदायों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उससे विदित होता है कि वे समाज में रहनेवाले व्यक्तियों को विद्या, कला, ज्ञान, नीति, नियम आदि की विद्यालयों वा व्यावहारिक जीवन में शिक्षा देकर उनका सुधार या संस्कार किया करते हैं। उनका मुख्य काम व्यक्ति को समाज के उपयुक्त बनाना और संस्कृत करना होता है। इस तरह कुछ समय तक समाज के सामान्य नियमों का पालन करते हुए उसके व्यक्तियों की एक संस्कृति बन जाती है। उसमें उनके काम ही नहीं गिने जाते, उनकी बुद्धि और भाव-संबंधी बातें भी आ जाती हैं। ये सब मिलकर किसी समाज की संस्कृति बनाती हैं। देश, काल और स्थितियों के कारण समाज का रूप भले ही बदलता जाय, परंतु जातिगत् विशेषताएँ प्रायः बड़ी कठिनाई से बदलती हैं। इसी कारण भिन्न भिन्न समाजों, देशों आदि

की संस्कृति में प्रायः समता नहीं होती। इसी विषमता के कारण विविध संस्कृतियों में कभी कभी विरोध उत्पन्न हो जाता है। परंतु आजकल संसार की ऐसी स्थिति नहीं कि इस तरह के विरोध से काम चल सके। इसलिये सभी नागरिकों को ऐसा होना चाहिये कि उनसे आपसी विरोध और संघर्ष को सहारा न मिले। यह तभी संभव होगा, जब लोग शिक्षित, शीलवान्, विवेकयुक्त, सौंदर्य की भावना से पूर्ण एवं सुरुचिवाले हों। नागरिक शिक्षा की पूर्णता ऐसे ही नागरिक तैयार करने में है। उत्तम नागरिकों पर ही समाज का सांस्कृतिक जीवन निर्भर होता है।

अभ्यास

१—राज्य का अन्य समदायों से जो संबंध हैं उसे समझाइये।

२—राज्य के आवश्यक अंगों का विवेचन कीजिये।

३—सरकार की परिभाषा लिखिये और यह बतलाइये कि समाज, सरकार, राज्य और राष्ट में क्या भेद है।

४—राज्य और नागरिक का क्या संबंध है?

५—देश-प्रेम और विश्व-प्रेम में आदर्श नागरिक की दृष्टि से क्या संबंध होना चाहिये?

६—राष्ट-संघ के क्या उद्देश्य हैं?

छठा अध्याय

राज्य के कार्य

(Functions of State)

राज्य और सरकार—राज्य के कार्यों का वर्गीकरण—राज्य के कार्य-संबंधी सिद्धांत—राज्य के आवश्यक कार्यों का विवरण—शांति और रक्षा, न्याय-विधान—लोकहित साधक कार्य—शिक्षा, हमारी शिक्षा की अवस्था, स्वास्थ्य और स्वच्छता, हमारा स्वास्थ्य, आर्थिक हित, हमारा आर्थिक जीवन, सामाजिक हित, हमारा सामाजिक जीवन—उपसंहार।

राज्य और सरकार—राज्य और सरकार में क्या अंतर है, इसे हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं। पर साधारणतः लोग नित्य-प्रति की बातचीत में राज्य और सरकार में भेदभाव नहीं करते। वे 'राज्य' के स्थान पर 'सरकार' शब्द का प्रयोग करते हैं, और 'सरकार' के स्थान पर 'राज्य' शब्द का। 'राज्य के कार्य' इस वाक्य का भी प्रयोग इसी प्रकार किया जाता है। राज्य के सारे काम सरकार द्वारा किये जाते हैं। अतएव जब हम राज्य के कामों की बातचीत करते हैं, तब वास्तव में हमारा तात्पर्य होता है सरकार के कामों से।

राज्य के कार्यों का वर्गीकरण—मोटे तौर पर हम राज्य के कामों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) आवश्यक कार्य (Essential Functions) और (२) लोकहित साधक कार्य (Ministrant Functions)। आवश्यक कार्य वे हैं जिनका किया जाना किसी जन-समूह के राज्य कहे जाने के लिए परमावश्यक है; जैसे देश में शांति स्थापित करना, बाहरी शत्रुओं से देश की रक्षा करना, न्याय की उचित व्यवस्था करना आदि। लोकहित साधक कार्य वे हैं जिनका किया जाना अथवा न किया जाना राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है। इनका उद्देश्य होता है नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उन्नति करना; जैसे, शिक्षा-प्रचार, सामाजिक कुरीतियों का निवारण, दस्तकारियों की वृद्धि आदि। यदि राज्य इन कामों को न करे तो उसके राज्य कहे जाने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, पर इनके न करने से अधिकांश नागरिक अंधकार में अवश्य पड़े रहते हैं।

राज्य के कार्य-संबंधी सिद्धांत—कुछ विद्वानों का मत है कि व्यक्ति के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसे अधिक से अधिक स्वाधीनता दी जाय। राज्य, व्यक्ति के कामों में जितना ही कम हस्तक्षेप करता है, उतना ही अधिक वह व्यक्ति के विकास में सहायक होता है। अतएव वे कहते हैं कि राज्य को केवल आवश्यक कार्य करना चाहिये, लोकहित साधक कार्य नहीं। उनके विचार में राज्य का काम वही है जो पुलिस का काम है। नागरिकों की उन्नति के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का हटाना ही राज्य का कार्य है। दूसरे विद्वान इससे सहमत नहीं। वे कहते हैं कि नागरिकों की

उन्नति के लिए राज्य को आवश्यक और लोकहित साधक, दोनों प्रकार के कार्य करना चाहिये। वे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का संचालन भी राज्य के अधीन करने के पक्ष में हैं। उनके विचार में व्यक्ति की स्वतंत्रता इतनी आवश्यक नहीं है, जितनी सहकारिता। उपर्युक्त दोनों मत कुछ अंश में सत्य हैं और कुछ अंश में भ्रमपूर्ण। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है राज्य और नागरिक के हितों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। अतएव नागरिक की उन्नति का सच्चा मार्ग वह है जब वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता बनता है, और राज्य आवश्यकतानुकूल उसकी सहायता करता है। अतएव राज्य के कार्य के विषय में निम्नलिखित सिद्धांत हमें, उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों की अपेक्षा, अधिक ठीक जान पड़ता है—राज्य को आवश्यक कार्य करना चाहिये और नागरिकों की योग्यताओं तथा आवश्यकताओं के अनुसार लोकहित साधक कार्य भी।

राज्य के आवश्यक कार्यों का विवरण— (अ) शांति और रक्षा—किसी देश की उन्नति के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि उसके निवासी शांत रहें, और भीतरी तथा बाहरी सभी प्रकार की बाधाओं से रक्षित हों। इसके लिए राज्य को विशेष कर्मचारियों का संगठन करना पड़ता है। इनके दो विभाग होते हैं—(१) पुलिस विभाग और (२) सेना विभाग। पुलिस विभाग का काम होता है देश के भीतर शांति और व्यवस्था बनाये रखना। पुलिस ही राज्य के नियमों के विरुद्ध व्यवहार करनेवालों का पता लगाती और उन्हें

दंड दिलाने का प्रबंध करती है। जनता के प्राण और धन की रखवाली भी पुलिस का काम है। सेना का काम प्रधानतः बाहर के शत्रुओं के आक्रमण से देश की रक्षा करना है। परंतु देश की भीतरी व्यवस्था में धर्म, राजनीति आदि के कारण गड़बड़ी हो जाने पर, पुलिस से काम न चलने पर, शांति स्थापित करना भी उसका काम है। आजकल सेना के तीन भाग होते हैं—(१) थल सेना, (२) जल सेना और (३) नभ सेना। थल सेना में अब पुराने समय की तरह तलवार, भाला आदि चलानेवाले सैनिक नहीं होते, प्रत्युत बंदूक, तोप, मशीनगन और टैंक चलानेवाले, पैदल, घुड़सवार, मोटर साइकिल और मोटर द्वारा युद्ध करनेवाले योद्धा होते हैं। जल सेना में जहाजी बेड़े होते हैं और नभ सेना में गुब्बारे और हवाई जहाज़। पिछले युरोपीय महायुद्ध तक, थल और जल सेना का ही विशेष महत्त्व था। लेकिन तब से नभ सेना ही प्रधान समझी जा रही है। आजकल प्रायः सभी देश थल और जल की सेना का संगठन तो करते ही हैं; परंतु वे अपनी नभ सेना की शक्ति को सबसे अधिक बढ़ाने में लगे हैं।

(ब) न्याय-विधान—देश की भीतरी शांति और व्यवस्था अकेले पुलिस के कर्मचारी नहीं कर सकते। उनका काम केवल नियम के विरुद्ध काम करनेवाले अपराधियों का पता लगाना और उन्हें गिरफ़्तार करना है। उनके अपराध की जाँच करने और उचित दंड देने के लिए, राज्य का एक अलग विभाग होता है। उसे न्याय-विभाग कहते हैं। इस विभाग के अधिकारी राज्य

के बनाये हुए क़ानूनों को न माननेवाले और उनके प्रतिकूल काम करनेवालों के कामों पर विचार करके उनके अपराध की मात्रा निश्चित करते हैं और अपराधी के व्यक्तित्व, पद, धन और अन्य बातों के कारण, उसके प्रति पक्षपात न करके, उसको उचित दंड देते हैं। दंड का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि अपराधी फिर से वैसा ही या दूसरा अपराध न करे, और दूसरे लोग भी उससे शिक्षा ग्रहण करके अपराध न करें। दंड से अपराधी को कष्ट अवश्य मिलता है, परंतु उससे उसका सुधार होता है और दूसरों को शिक्षा मिलती है। न्याय के द्वारा नागरिकों के हृदय में क़ानून के प्रति सद्भाव पैदा होता है और वे उसके विरुद्ध काम करने से डरते और बचते हैं। न्याय ही उनके हित और अधिकार की रक्षा करता है। इन सब बातों के लिए यह आवश्यक है कि न्याय में किसी का पक्ष न लिया जाय, उसका प्राप्त करना बहुत व्ययसाध्य न हो और उसके लिए आवश्यकता से अधिक समय न लगे।

लोकहित साधक कार्य—(अ) शिक्षा—देश में शांति और व्यवस्था भले ही पुलिस, सेना, और न्याय-विभाग के कर्मचारी और अधिकारी कर लें, परंतु उसकी उन्नति के लिए इनसे विशेष काम नहीं चल सकता। उसके लिए जनता का अधिक से अधिक शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षित होने से यह न समझना चाहिये कि लोगों को लिखना पढ़ना आता हो, वे हिंदी, उर्दू, अँगरेज़ी आदि भाषाओं की पुस्तकें पढ़ सकते हों, उनमें लिखी बातों को समझ सकते हों और स्वयं एक या अधिक भाषाओं का

लिखना जानते हों। इसमें संदेह नहीं कि शिक्षा का अर्थ साधार णतः लिखना पढ़ना ही समझा जाता है। परंतु नागरिक का काम केवल लिखना पढ़ना जानने से नहीं चल सकता। उसको इसके अतिरिक्त अपनी जीविका कमाने का ज्ञान भी होना अनिवार्य है राज्य का यह कर्तव्य है कि लिखने पढ़ने की शिक्षा की व्यवस्था करने के साथ ही वह अपने नागरिकों को इस योग्य बनावे कि वे उचित श्रम के द्वारा अपने और परिवार के भरण-पोषण के लिए धन कमा सकें।

हमारी शिक्षा की अवस्था—हमारे देश में अभी तक शिक्षा का प्रचार बहुत कम हुआ है। लगभग ९० प्रतिशत पुरुष पढ़ना लिखना तक नहीं जानते। अशिक्षित स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा कहीं ज्यादा है। देश में सरकार और सर्वसाधारण द्वारा खोले गये अनेक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय अवश्य हैं परंतु भारतीय जनसंख्या को देखते हुए वे बहुत कम हैं। इन शिक्षालयों में भी व्यावहारिक शिक्षा पर ज़ोर नहीं दिया जाता; केवल किताबें पढ़ायी जाती हैं। विद्यार्थी भी किताबी कीड़े बन जाते हैं और शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नौकरी की तलाश में इधर उधर घूमने लगते हैं। हमारी सरकार का कर्तव्य है कि वह आवश्यकतानुसार अधिक शिक्षालय खोलकर समस्त भारतीय बालक-बालिकाओं की शिक्षा का प्रबंध करे, अशिक्षित स्त्रियों और पुरुषों को शिक्षित बनावे और व्यावहारिक शिक्षा पर ज़ोर दे जिससे शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् सब लोग नौकरी की तलाश

में इधर उधर न फिरें, वरन् अपने अपने काम में लग जायँ। भारतवर्ष के प्रत्येक शिक्षित नागरिक का भी कर्तव्य है कि वह असंख्य अशिक्षित भारतीयों में से कुछ को शिक्षित अवश्य बनावे।

(ब) स्वास्थ्य और स्वच्छता—शिक्षा और ज्ञान से सम्पन्न होने पर भी यदि मनुष्य का शरीर कमज़ोर या रोगी होता है तो वह ठीक तौर से कोई काम नहीं कर सकता अथवा बिल्कुल ही नहीं कर सकता। इसलिए जनता को स्वस्थ रहने की आवश्यकता है। लोगों को स्वयं ही ऐसे ढंग से अपना रहन-सहन और खान-पान रखना चाहिये जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहे। परंतु ऐसा करने के लिए राज्य की देखभाल की भी ज़रूरत है। बलवान एवं शक्तिशाली नागरिकों के बिना देश की न तो रक्षा हो सकती है और न उन्नति ही। स्वस्थ रहने से ही लोग शक्तिशाली तथा राज्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इसलिए राज्य में, जनता के स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रबंध के लिए एक अलग विभाग होता है। इस विभाग का काम होता है जनता में स्वास्थ्य और स्वच्छता की आवश्यकता और उपयोगिता का प्रचार करना और इनके लिए प्रबंध करना। खाने-पीने की वस्तुएँ, शुद्ध और बेमेल हों; सड़ी गली, बासी या दूषित न हों; लोगों के रहने के स्थान स्वच्छ हों; उनमें खुली और साफ़ हवा एवं रोशनी पहुँचती हो; निवास-स्थान के आसपास कूड़ा-करकट, गंदगी, सड़ता हुआ पानी आदि न हो; लोगों को खेलने-कूदने और घूमने के लिए खुले मैदान,

उद्यान आदि सुलभ हों—ये तथा इस तरह की अन्य बातें जनता के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। राज्य अपने क़ानूनों और स्वास्थ्य विभाग के द्वारा इनकी व्यवस्था करता है। साथ ही राज्य का काम है कि वह लोगों के रोगों की चिकित्सा के सुलभ साधन प्रस्तुत करे; और प्लेग, हैज़ा, चेचक, बेरीबेरी आदि छूतवाली बीमारियों के फैलने पर टीका और दवा का लाभ सर्वसाधारण तक पहुँचावे। इतना ही नहीं, जनता के द्वारा इस प्रकार के उद्योगों को नियमित और व्यवस्थित रखने में हर तरह से सहायता करना भी राज्य का कर्तव्य है। नागरिकों को भी चाहिये कि राज्य के द्वारा किये जानेवाले प्रबंध से लाभ उठावें और उसमें उसका हाथ बटावें।

हमारा स्वास्थ्य—हमारे देशवासियों का स्वास्थ्य संतोषप्रद नहीं है। भारतीयों का जीवन-काल अँगरेज़ों के जीवन-काल का लगभग आधा है। ५० या ६० वर्ष की अवस्था के पश्चात् भारत-वासी प्रायः निकम्मे हो जाते हैं। बहुतेरे तो इस अवस्था तक पहुँचते ही नहीं। अनेक जन्मते ही मर जाते हैं। किसी किसी नगर में तो ५० प्रतिशत् बच्चे जन्म लेने के ६ दिन के भीतर ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुकते हैं। अनेक युवतियाँ और युवक प्लेग, हैज़ा, क्षय आदि बीमारियों के कारण अकाल ही मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। भारतीयों के अस्वस्थ होने का प्रधान कारण है उनकी दरिद्रता। ग़रीबी के कारण अनेक सड़ी-गली और बासी वस्तुएँ खाकर अपना पेट पालते हैं। बहुतों को दोनों समय पेट भर रूखा-सूखा भोजन तक नहीं मिलता, पुष्टिकारक

भोजन मिलना तो दूर रहा। लोग गंदे और घने घरों में रहते हैं, तन भर कपड़े नहीं पहन सकते और बीमार होने पर दवा, पथ्य आदि का प्रबंध नहीं कर सकते। जनता में स्वास्थ्य के प्रति कुछ उदासीनता भी है। स्वच्छता की आदतों का अभाव है। अपने घर को साफ़ करके उसका कूड़ा-करकट दूसरों के घर के सामने फेंकने में हम लोग बहुत कम हिचकते हैं। बहुतेरे तो बीमार होने पर भी औषधालय तक दवा लेने नहीं जाते। इस तरह भारतवर्ष में अनेक बीमारियों ने अपना अड्डा बना लिया है।

भारतीयों को स्वस्थ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार और जनता दोनों में सहयोग हो। सरकार ने स्वास्थ्य-विभाग खोल रखा है। प्रत्येक बड़े शहर में एक सरकारी अस्पताल होता है, जहाँ पर मुफ़्त चिकित्सा की जाती है। जनता द्वारा भी खोले गये अनेक औषधालय और अस्पताल हैं। म्युनिसिपिल्टियाँ और ज़िला बोर्ड अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग सर्वसाधारण के स्वास्थ्य-सुधार के लिए ख़र्च करते हैं। पर भारतीय जन-संख्या को देखते हुए मौजूदा अस्पतालों और औषधालयों की संख्या बहुत कम है। उनमें संतोषप्रद चिकित्सा की व्यवस्था भी नहीं है। नये वैज्ञानिक आविष्कार जब पाश्चात्य देशों में बरसों पुराने हो जाते हैं, तब कहीं वे भारतीय अस्पतालों में काम में लाये जाते हैं, और तब भी इस शर्त पर कि उनमें अधिक ख़र्च न हो। हमारी सरकार का कर्तव्य है कि वह हमारे स्वास्थ्य-सुधार का उचित प्रबंध करे। हम लोगों का भी यह कर्तव्य है कि हम सफ़ाई की आदत

डालें और स्वास्थ्य के प्रति उदासीन न रह कर, भारतीय स्वास्थ्य-सुधार में सरकार की सहायता करें।

(स) आर्थिक हित—ऊपर राज्य के द्वारा किये जानेवाले जिन प्रयत्नों का वर्णन हुआ है उन सब का एकमात्र उद्देश्य है लोगों को सुख पहुँचाना। परंतु उनको, सांसारिक आवश्यकताओं के पूरा करने और सुख से रहने के लिए, धन की ज़रूरत होती है। यदि जनता के पास अपने ज़रूरी कामों के लिए रुपया-पैसा न हो तो वह कुछ नहीं कर सकती। राज्य कोई अनाथालय तो है नहीं, जो सब लोगों को उनके व्यय के लिए धन बाँटा करे। फिर भी देश की आर्थिक दशा, राज्य के प्रबंध पर निर्भर रहती है। किसी भी देश के अधिकांश लोग किसान, मज़दूर आदि होते हैं, जिनको जीवन की नितांत आवश्यकताओं तक के लिए तरसना पड़ता है। इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे नियम बनावे और काम में लावे जिनसे संपत्ति थोड़े से लोगों के पास ही एकत्र न रह जाय तथा वे लोग ही उससे मौज करें और अधिकतर लोग भूखों मरें या कष्ट से रहें। इसके लिए किसानों के लगान संबंधी नियम ही उनके अनुकूल न होना चाहिये, बल्कि उनके द्वारा उत्पन्न की गयी वस्तुओं की बिक्री, एवं उनके लिए सहायक घरेलू उद्योग-धंधों का भी प्रबंध होना चाहिये। इसी तरह मज़दूरों की दशा सुधारनेवाले नियम बनाना चाहिये, और उनकी बेकारी को दूर करने का यत्न होना चाहिये। उनके अपंग या वृद्ध होने पर पेंशन, उनके जीवन के बीमा आदि का प्रबंध राज्य को ही करना उचित है। राज्य को

ऐसे ही, अन्य काम भी करना चाहिये जिनसे देश की सांपत्तिक अवस्था सुधरे और अर्थ-संकट के समय लोगों की रक्षा हो। नागरिकों की आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर ही राज्य समृद्ध और शक्तिसंपन्न होता है।

हमारा आर्थिक जीवन—हमारा आर्थिक जीवन भी संतोषप्रद नहीं है। लगभग ८० प्रतिशत् मनुष्य खेती से अपना निर्वाह करते हैं। उनकी आमदनी इतनी कम है कि कभी कभी उनको पेट भर भोजन और तन भर कपड़ा तक नहीं मिलता। वे ऋण के भार से बुरी तरह दबे हुए हैं। ज़मींदार और महाजन उनकी कमाई का अधिकांश खा जाते हैं, फिर भी उनका ऋण पहले ही जैसा बना रहता है। बहुतेरे किसान जन्म से ही ऋणी होते हैं। इसी दशा में वे अपना सारा जीवन काटते और जीवन-यात्रा समाप्त करते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों का उनके खेती करने के ढंग पर अब तक कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। वही हल-कुदार, जिससे सैकड़ों बरस पहले उनके पूर्वज काम करते थे, आज भी उनकी जीविका का साधन है। उनके बैल पहले की अपेक्षा दुर्बल और बीमार हैं। वही पुरानी खाद, यदि मिल गयी, तो वे खेतों में डाल देते हैं, अन्यथा पृथ्वी से जो कुछ निकल सके उसी के निकालने का प्रयत्न करते हैं।

जैसी दशा किसानों की है वैसी ही मज़दूरों की भी है। भारतीय दस्तकारियाँ अभी तक आरंभिक अवस्था में हैं। सूती और ऊनी कपड़े, लोहे, शक्कर आदि की दस्तकारियाँ कुछ उन्नत अवस्था

में ज़रूर हैं, परंतु भारतीय क्षेत्रफल, जनसंख्या और साधनों के देखते हुए वे बहुत ही कम हैं। इनमें काम करनेवाले मज़दूरों की अवस्था शोचनीय है। उन्हें चार पाँच आने के लिए, प्रति दिन नौ दस घंटे काम करना पड़ता है। शहरों में उनके रहने का समुचित प्रबंध नहीं होता। अतएव वे ऐसे घने, गंदे और अस्वस्थ स्थानों में रहते हैं जहाँ उनका और उनके स्त्री-बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। पिछले कुछ बरसों से उन्होंने अपने को मज़दूर-संघों में संगठित कर लिया है। यही उनके हित के लिए सरकार वा पूँजीपतियों से उद्योग किया करते हैं।

हमारी सरकार का कर्तव्य है कि वह हमारी आर्थिक उन्नति का भरसक प्रयत्न करे, किसानों की दशा सुधारे, नयी नयी दस्तकारियाँ चला कर बेकारी दूर करे, मज़दूरों और पूँजीपतियों की लड़ाई का अंत करे, और इस बात की कोशिश करे कि प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी सामान्य आवश्यकताओं की वस्तुएँ सुगमता से पा सके। आर्थिक अवस्था सुधरते ही, भारतीय जीवन की अधिकांश बुराइयाँ अपने आप ही लुप्त हो जायँगी और भारतवर्ष युरोपीय देशों की भाँति, एक समृद्धिशाली और उन्नतिशील देश हो जायगा।

(द) सामाजिक हित—वैसे तो राज्य के उक्त सब काम समाज के हित के लिए होते हैं, परंतु कुछ काम ऐसे हैं जो विशेष रूप से सामाजिक हित के काम कहे जा सकते हैं। यहाँ पर ऐसे कामों का वर्णन किया जायगा। लोगों के आने जाने, व्यापारिक सुविधा आदि के लिए देश में सड़कें, घाट, पुल, रेल, बंदरगाह

आदि की आवश्यकता होती है; सिंचाई के लिए कुओं, नहरों आदि की ज़रूरत पड़ती है और राज्य के विविध कामों तथा कर्मचारियों के रहने, ठहरने आदि के लिए भवन बनवाने होते हैं, और उनकी मरम्मत करनी होती है। ऐसे कितने ही काम राज्य के द्वारा होते हैं, जिनका उद्देश्य जनता और समाज का हित होता है। परंतु इस स्थान पर राज्य के समाज के हितप्रद कामों से हमारा तात्पर्य उन कामों से है जो वह समाज के रीति-रेवाज और रहन-सहन के ढंग आदि में, समय के अनुसार, सुधार करने के लिए करता है। समाज में चेतन प्राणी के सभी लक्षण होते हैं। उसमें विविध प्रभावों और कारणों से लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। राज्य का काम होता है समाज में ऐसे परिवर्तनों को होते रहने देना, जिनसे उसका कल्याण हो। साथ ही समाज में जो कुरीतियाँ या बुराइयाँ चल पड़ती हैं उनका दूर करना और उनके स्थान पर अच्छे रेवाजों का प्रचलित करना भी राज्य का ही काम है। समाज की शक्ति क्षीण करनेवाली बातें—जैसे नशीली चीज़ों का व्यवहार, जनता में द्वेष फैलानेवाले काम आदि—राज्य ही रोक और नष्ट कर सकता है। समाज की शक्ति बढ़ानेवाले सुधार भी राज्य की सहायता के बिना पूरी तरह से नहीं हो सकते। इस तरह राज्य के प्रयत्न से ही समाज के हितप्रद काम हो सकते हैं। परंतु जैसे अन्य मामलों में, वैसे ही इनमें भी, राज्य को नागरिकों के सहयोग की, आवश्यकता पड़ती है। यह सहयोग अंततः स्वयं नागरिकों के लिए ही हितकर होता है।

हमारा सामाजिक जीवन—हमारा सामाजिक जीवन अनेक बुराइयों से परिपूर्ण है। उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—(१) जातिभेद द्वारा संचालित ऊँच नीच का भाव, (२) जन्म के आधार पर, काम के आधार पर नहीं, ऊँची नीची जातियों में होना, (३) स्त्रियों की हीनावस्था, (४) अछूतों का अस्तित्व, (५) विधवा-विवाह की कमी, (६) बाल-विवाह, (७) शिक्षा का अभाव; (८) जन्म, विवाह, मृत्यु आदि के समय आवश्यकता से अधिक व्यय आदि। हमारी सरकार का कर्तव्य है कि वह इन सामाजिक बुराइयों के दूर करने का प्रयत्न करे। किंतु यह काम बड़ा नाज़ुक है। यदि जनता स्वयं इन कामों के किये जाने के लिए सरकार से अनुरोध करे और हर तरह उसका साथ दे, तब ये सुधार आसानी से किये जा सकते हैं। सामाजिक सुधारों का भार सरकार पर उतना नहीं है जितना स्वयं नागरिकों पर है।

उपसंहार—उपर्युक्त कामों के अतिरिक्त राज्य के और भी अनेक काम हैं। जिन कामों से नागरिकों का जीवन सुखमय हो सके उन सब का करना राज्य का धर्म है। परंतु इन सब कामों को करते हुए सरकार को कभी यह न भूलना चाहिये कि मनुष्य के व्यक्तित्व की भी रक्षा करना उसके लिए उतना ही आवश्यक है जितना लोकहित के कार्य करना।

अभ्यास

१—राज्य के आवश्यक और लोकहित साधक कार्यों का भेद समझाइये।
२—देश की शांति और रक्षा के लिए सरकार क्या प्रबंध करती है?

३—शिक्षा-प्रचार के संबंध में सरकार और शिक्षित नागरिकों का क्या कर्तव्य है ?

४—हिंदू समाज में कौन कौन सी कुरीतियाँ हैं ? क्या आप चाहते हैं कि सरकार नियमों द्वारा उनका अंत करे ।

५—देश के आर्थिक जीवन को सुधारने के लिए राज्य को क्या करना चाहिये ?

६—"सरकार को लोकहित के काम तो करना ही चाहिये किंतु व्यक्ति के व्यक्तित्व की भी रक्षा करना चाहिये ।" इस वाक्य को समझाइये ।

सातवाँ अध्याय

शासन-पद्धति या सरकार

(Government)

राज्य के प्रकार—राज्य और सरकार—सरकार के भेद—राजतंत्र, उच्चजनतंत्र, लोकतंत्र; एकात्मक सरकार, संघ सरकार; सभात्मक सरकार, अध्यक्षात्मक सरकार—शासन-विधान—सरकार के अंग—व्यवस्थापक मंडल, शासक-मंडल, न्याय-विभाग—तीनों अंगों का परस्पर संबंध।

राज्य के प्रकार—हम जानते हैं कि प्रत्येक राज्य के (१) भूमि-भाग, (२) जनसंख्या, (३) स्वतंत्रता और (४) संगठन—ये चार आवश्यक अंग होते हैं। इन बातों में सब राज्य समान होते हैं। तो भी बहुत सी बातों में भेद होने के कारण भिन्न भिन्न आधारों पर राज्यों का वर्गीकरण हो सकता है। जैसे क्षेत्रफल के आधार पर कुछ राज्य बड़े राज्य कहे जा सकते हैं और कुछ छोटे; शक्ति के आधार पर कुछ राज्य शक्तिशाली राज्य (महाशक्ति) कहे जा सकते हैं और कुछ कमज़ोर। पर साधारणतः राज्यों का वर्गीकरण उनकी सरकार के आधार पर होता है। अतएव जितने प्रकार की सरकारें होती हैं, उतने ही प्रकार के राज्य भी समझे जा सकते हैं।

राज्य और सरकार—जिस संगठित जनसमूह के द्वारा राज्य के काम-काज व्यवस्थित रूप से चलते हैं उसे सरकार कहते हैं। सरकार राज्य की भाँति स्थायी नहीं होती। वह परिस्थिति के अनुकूल बदलती रहती है। मृत्यु अथवा अवधि समाप्त होने के कारण, इस जनसमूह में निरंतर नये नये व्यक्ति आते रहते हैं। कभी कभी तो इसका रूप ही बदल जाता है। फिर भी किसी न किसी रूप में प्रत्येक राज्य में सरकार होती है, इसमें संदेह नहीं। सरकार के बिना न तो राज्य की व्यवस्था हो सकती है और न उसके काम ही पूरे उतर सकते हैं।

सरकार के भेद—(अ) राजतंत्र (Monarchy), उच्च-जनतंत्र (Aristocracy), लोकतंत्र (Democracy)—भिन्न भिन्न कालों और स्थितियों के कारण सरकार के अनेक भेदों का हो जाना स्वाभाविक है। यदि राज्य का सारा शासनाधिकार एक ही व्यक्ति के हाथ में होता है तो उसे राजतंत्र कहते हैं; यदि कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथ में, तो उच्चजनतंत्र और यदि जनता के हाथ में, तो लोकतंत्र। राजतंत्र का सर्वोच्च अधिकारी राजा कहा जाता है। यदि राजा, राज्य के सारे काम, अपने ही इच्छानुसार करता है, नियमों के बंधन को नहीं मानता और जनता के हित अथवा अहित का भी ख़याल नहीं करता, तो ऐसे राजतंत्र को निरंकुश राजतंत्र (Absolute Monarchy) कहते हैं। परंतु यदि राजा नियमों के बंधन को मानता है, उनके प्रतिकूल न कुछ करता और न कर सकता है और उसके सारे काम प्रजा के हित के

लिए होते हैं, उसके विरुद्ध नहीं हो सकते, तो ऐसे राजतंत्र को परिमित राजतंत्र (Limited Monarchy) कहते हैं। राजतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राजा नीति के अनुसार चले और स्वयं सच्चरित्र, बुद्धिमान और पक्षपातरहित हो।

यदि राज्य का शासनाधिकार कुछ व्यक्तियों के हाथ में होता है तो उसे उच्चजनतंत्र कहते हैं। इसका मूल सिद्धांत है योग्य पुरुषों का शासन। उच्चजनतंत्र में शासनाधिकार कहीं बलवान मनुष्यों को, कहीं धनी मनुष्यों को, और कहीं योग्य व्यक्तियों को होता है। साधारणतः इस प्रकार की सरकार में जन्म के ही आधार पर शासनाधिकार मिल जाता है। इस प्रकार की सरकार की सफलता का एकमात्र साधन एकता है। यदि उच्चजनों में फूट उत्पन्न हो जाती है तो उच्चजनतंत्र के विनाश में देर नहीं लगती।

जब राज्य का शासनाधिकार जनता के हाथ में होता है तो उसे लोकतंत्र कहते हैं। ऐसी सरकार दो प्रकार की होती है— (१) प्रत्यक्ष लोकतंत्र (Direct Democracy) और (२) प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy)। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में सब लोग स्वयं अपने शासन के नियम आदि बनाते हैं। पुराने समय में कुछ देशों में इस प्रकार के प्रत्यक्ष लोकतंत्र थे। उदाहरण के लिए यूनान के नगर-राज्यों (City States) का नाम लिया जा सकता है। वहाँ एक एक नगर का ही राज्य होता था। उसके निवासी नागरिक कहलाते थे, और वे ही एक स्थान पर मिलकर अपने राज्य का शासन करते थे।

परंतु अब राज्यों का क्षेत्र यूनान के नगर-राज्यों से कहीं बढ़ गया है। इसलिए अब यह संभव नहीं कि उनके सभी नागरिक प्रत्यक्ष रूप से नियम आदि बना सकें। अतएव वे एक स्थान पर एकत्र होने के बजाय अपने में से कुछ लोगों को चुन लेते हैं। ये जनता के प्रतिनिधि कहलाते हैं और राज्य का सारा कामकाज करते हैं। इस तरह जनता अप्रत्यक्ष रूप से अपना शासन करती है। ऐसे लोकतंत्र को प्रतिनिधि लोकतंत्र कहते हैं।

प्रतिनिधि शासन-प्रणाली जिन देशों में प्रचलित होती है, वहाँ के प्रायः सभी वयस्क स्त्रियों और पुरुषों को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। प्रतिनिधि शासन-प्रणाली की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि जनता योग्य प्रतिनिधियों को चुने और ऐसे व्यक्ति प्रतिनिधि बनने के लिए तैयार हों। जनता के प्रतिनिधियों का धर्म है कि वे निर्भीक होकर उसकी भलाई के लिए लड़ें और स्वार्थ-साधन के लिए सर्वसाधारण के हितों पर आघात न होने दें।

एकात्मक (Unitary) **सरकार और संघ** (Federal) **सरकार**—केंद्रीय और प्रांतीय सरकार के संबंध के आधार पर, सरकार के एकात्मक सरकार और संघ-सरकार—ये दो भेद किये जा सकते हैं। एकात्मक सरकार में राज्य के सारे काम केंद्रीय सरकार के अधीन होते हैं। प्रांतीय सरकारें केवल शासन के सुभीते के लिए बनायी जाती हैं। उन्हें अपने अधिकार केंद्रीय सर-कार से मिलते हैं और वे सर्वदा उसी के अधीन होती और उसी

के निरीक्षण में राजकाज करती हैं। केंद्रीय सरकार की आज्ञा मानना उनके लिए अनिवार्य होता है। इस प्रकार की सरकार में राज्य का कोई भी काम ऐसा नहीं है जो केंद्रीय सरकार के अधीन अथवा निरीक्षण में न हो।

संघ-सरकार की व्यवस्था इससे भिन्न होती है। यदि कई छोटे छोटे राज्य पास पास हों, और उनमें भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति आदि की समानता हो, तो साधारणतः किसी बाहरी ख़तरे अथवा आर्थिक लाभ के लिए, वे सब मिलकर एक नयी सरकार स्थापित करते हैं और उसे शासन-संबंधी कुछ ऐसे अधिकार प्रदान करते हैं जो सब राज्यों पर लागू हों। शेष अधिकार वे अपने ही अधीन रखते हैं। इस प्रकार की सरकार को संघ-सरकार कहते हैं। संयुक्त-राज्य अमेरिका की सरकार इसी प्रकार की है। कभी कभी संघ-राज्य मौजूदा एकात्मक राज्य को तोड़कर स्थापित किया जाता है, और कार्य-विभाजन का ढंग भी दूसरा होता है। भारतीय संघ-राज्य आजकल के एकात्मक राज्य को तोड़कर बनेगा। केनाडा में, प्रांतीय सरकारों के अधिकार निश्चित कर दिये गये हैं और शेष अधिकार केंद्रीय सरकार के अधीन रखे गये हैं।

प्रत्येक संघ-सरकार में निम्नलिखित तीन बातों का होना आवश्यक होता है—(१) लिखित शासन-विधान, जो आसानी से बदला न जा सके; (२) शासन-विधान के अनुसार कार्य-विभाजन और (३) न्यायालयों का विशेष स्थान। कार्य-विभाजन और शासन-विधान के कारण, संघ-राज्य और उसके अंत-

गंत राज्यों में कभी कभी मतभेद हो जाता है। उस मतभेद के तय करने का अधिकार संघीय न्यायालय को दिया जाता है।

अमेरिका के स्वातंत्र्य-युद्ध के पश्चात्, संसार के भिन्न भिन्न भागों में संघ-सरकार का खूब प्रचार हुआ है। जिन देशों का क्षेत्रफल अधिक हो, जिनमें भाँति भाँति की संस्कृति हो और जिनके निवासी एकता लाभ के साथ साथ अपनी स्वतंत्र संस्कृति की रक्षा के पक्ष में हों, उनके लिए संघ-सरकार ही उपयुक्त सरकार हो सकती है।

एकात्मक सरकार और संघ-सरकार दोनों प्रतिनिधि सरकार के रूप में हो सकती हैं। इँगलैंड की सरकार एकात्मक प्रतिनिधि सरकार है, और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार संघ प्रतिनिधि सरकार।

सभात्मक (Parliamentary) **और अध्यक्षात्मक** (Presidential) **सरकार**—व्यवस्थापक मंडल और शासक-मंडल के संबंध के आधार पर सरकार के सभात्मक सरकार और अध्यक्षात्मक सरकार दो भेद किये जा सकते हैं। सभात्मक सरकार को उत्तरदायी सरकार भी कहते हैं। ऐसी सरकार में शासक-मंडल, व्यवस्थापक मंडल का अंग होता है और अपनी नीति तथा कामों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी होता है। यदि व्यवस्थापक मंडल का शासक-मंडल में विश्वास न रह जाय और वह अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार कर दे, तो उसे (शासक-मंडल को) अपने पद से हटना पड़ता है। इँगलैंड की सरकार इसी प्रकार की

सरकार है। अध्यक्षात्मक सरकार की व्यवस्था इससे भिन्न होती है। उसमें शासनाधिकार एक अध्यक्ष के अधीन होता है। वह नियत काल के लिए जनता द्वारा चुना जाता है। उसकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी समिति होती है। उसके सदस्यों को वह स्वयं नियुक्त करता है। कार्यकारिणी समिति के सदस्य अपने कामों के लिए अध्यक्ष के ही प्रति उत्तरदायी होते हैं। अध्यक्षात्मक सरकार में शासक-मंडल, और व्यवस्थापक मंडल दोनों एक दूसरे से अलग रहते हैं। सभात्मक सरकार की भाँति, अध्यक्षात्मक सरकार में शासक-मंडल, व्यवस्थापक मंडल का अंग नहीं होता और न वह उसके प्रति उत्तरदायी ही होता है। व्यवस्थापक मंडल के अविश्वास के प्रस्तावों का उसके कार्यकाल पर कुछ असर नहीं पड़ता। संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार अध्यक्षात्मक सरकार है।

शासन-विधान—सरकार चाहे जिस प्रकार की हो, प्रत्येक में शासन-विधान का होना आवश्यक है। शासन-विधान उन नियमों का सामूहिक नाम है जिनके अनुसार सरकार संगठित की जाती है और शासकों तथा शासितों के अधिकार तथा कर्तव्य निर्धारित किये जाते हैं। शासन-विधान या तो लिखित (Written) होता है या अलिखित (Unwritten)। कुछ देशों का शासन-विधान आसानी से बदला जा सकता है। ऐसे शासन-विधान को लचकदार (Flexible) शासन-विधान कहते हैं। पर कुछ देशों में शासन-विधान के बदलने की विशेष व्यवस्था होती है। ऐसे शासन-विधान को बेलचक (Rigid) शासन-विधान कहते हैं। इँगलैंड का शासन-

विधान लचकदार अलिखित शासन-विधान है और संयुक्त-राज्य अमेरिका का शासन-विधान लिखित बेलचक शासन-विधान है।

सरकार के अंग—प्रत्येक शासन-विधान में सरकार के विभिन्न अंगों के संगठन और अधिकारों का वर्णन होता है। चाहे जिस प्रकार की सरकार हो उसको अपने काम का बँटवारा करना ही पड़ता है। एक या कुछ व्यक्ति मिलकर राज्य के सब काम नहीं कर सकते। सरकार के जितने काम होते हैं वे प्रधान रूप से तीन विभागों के अंतर्गत होते हैं—(१) व्यवस्थापक मंडल (Legislature); (२) शासक-मंडल (Executive); (३) न्याय-विभाग (Judiciary)। इन्हीं तीन विभागों में सरकारी काम करने-वाले सभी कर्मचारियों और उनके कर्तव्यों का समावेश होता है। ये सरकार के अंग हैं। जिस तरह शरीर के भिन्न भिन्न अंग, स्वतंत्र होते हुए भी एक दूसरे से मिले होते हैं और एक दूसरे से हिलमिलकर काम करते हैं उसी तरह सरकार के उक्त अंग भी अपने अपने कामों के लिए स्वतंत्र होते हुए भी सहयोगी होते हैं।

व्यवस्थापक मंडल—निरंकुश राजतंत्र को छोड़कर अन्य प्रत्येक प्रकार की सरकार में कुछ ऐसे लोग अवश्य होते हैं जिनको राज्य के नियम बनाने का अधिकार होता है। निरंकुश राजतंत्र में, साधारणतः राजा की इच्छा ही नियम का काम करती है। परंतु अन्य प्रकार की सरकारों में नियम बनाने के लिए एक या दो सभाएँ होती हैं। यदि एक सभा हो तो उसे व्यवस्थापक सभा कहते हैं और यदि दो, तो व्यवस्थापक मंडल। संसार के अधिकांश देशों

में आजकल दो सभाओं के व्यवस्थापक मंडल हैं। उनमें से एक सभा को छोटी सभा (Lower House) और दूसरी को बड़ी सभा (Upper House) कहते हैं।

छोटी सभा का यह अर्थ नहीं कि उसका आकार छोटा होता है। साधारणतः उनके सदस्यों की संख्या बड़ी सभा के सदस्यां की संख्या से अधिक होती है। अधिकारों में भी छोटी सभा बड़ी सभा से बढ़कर होती है। उसके छोटी सभा कहे जाने का कारण यह है कि उसमें छोटे आदमियों अर्थात् जनता के प्रतिनिधि बैठते हैं। लोकतंत्र स्थापित होने के पूर्व अलबत्ता उसके अधिकार बड़ी सभा की अपेक्षा कम थे।

छोटी सभा के सब अथवा अधिकांश सदस्य जनता द्वारा चुने गये उसके प्रतिनिधि होते हैं। जिन देशों में लोकतंत्र स्थापित हो चुका है, वहाँ छोटी सभा के प्रतिनिधियों को चुनने के लिए प्रायः सभी वयस्क स्त्रियों और पुरुषों को वोट देने का अधिकार होता है। कुछ देशों, जैसे फ्रांस, में अभी तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं दिया गया है और कुछ में वयस्क होने के अतिरिक्त शिक्षा, संपत्ति-संबंधी कुछ नियम होते हैं। छोटी सभा का कार्यकाल भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न होता है। प्रायः इस सभा के साल में दो अधिवेशन होते हैं, पर साल में एक अधिवेशन का होना अनिवार्य समझा जाता है। भारतवर्ष में मौजूदा छोटी सभा के कुछ सदस्यों को (शिक्षा और संपत्ति-संबंधी नियमों के अनुसार) जनता चुनती है, और कुछ को सरकार मनोनीत करती है।

बड़ी सभा के निर्माण करने की व्यवस्था भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न होती है। कुछ देशों, जैसे इँगलैंड, में बड़ी सभा के सारे सदस्य सर्वोच्च शासक अथवा राजा के द्वारा मनोनीत किये जाते हैं; कुछ, जैसे ऑस्ट्रेलिया, में जनता द्वारा चुने जाते हैं; कुछ, जैसे दक्षिणी अफ्रीका, में छोटी सभा के सदस्यों के द्वारा चुने जाते हैं; और कुछ, जैसे भारतवर्ष, में कुछ जनता के द्वारा चुने जाते हैं और कुछ सर्वोच्च शासक द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। बड़ी सभा का कार्यकाल भी भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न होता है। व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के अधिकार, आर्थिक प्रस्तावों को छोड़कर साधारणतः समान होते हैं। किसी प्रस्ताव के नियम बनने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों सभाएँ एकमत हों। यदि दोनों सभाओं में मतभेद होता है तो या तो वह प्रस्ताव गिर जाता है, या बड़ी सभा को दबना पड़ता है, या दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन का निर्णय, दोनों सभाओं का निर्णय समझा जाता है।

केवल नियम बनाना ही व्यवस्थापक मंडल का कार्य नहीं होता। जिन देशों में उत्तरदायी सरकार है वहाँ व्यवस्थापक मंडल शासन का निरीक्षण करता है और अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा शासक-मंडल को अपने पद से हटा तक सकता है। राज्य की आर्थिक अवस्था की देखरेख का अधिकार साधारणतः व्यवस्थापक मंडल, विशेष रूप से उसकी छोटी सभा, को होता है।

शासक-मंडल (Executive)—प्रत्येक प्रकार की सरकार में एक व्यक्ति अथवा संस्था ऐसी होती है जो व्यवस्थापक

मंडल के द्वारा बनाये गये नियमों को कार्यरूप में परिणत करती है। इँगलैंड और अमेरिका के शासक-मंडल एक ही व्यक्ति के अधीन है, और स्विट्ज़रलैंड का एक सभा के अधीन। जिस व्यक्ति के अधीन शासक-मंडल होता है वह, कुछ देशों में अपने अधिकारों का वास्तविक उपयोग कर सकता है, पर कुछ देशों में उसके अधिकार नाममात्र के लिए होते हैं। इँगलैंड के राजा और फ्रांस के राष्ट्रपति के अधिकार केवल नाम के लिए (Nominal) हैं, परंतु अमेरिका के राष्ट्रपति के अधिकार वास्तविक (Real) अधिकार हैं। भिन्न भिन्न देशों के सर्वोच्च शासक भिन्न भिन्न ढंग से नियुक्त होते हैं। इँगलैंड की राजगद्दी पुश्तैनी है। पिता के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र राज्य का अधिकारी होता है। फ्रांस के राष्ट्रपति को व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाएँ चुनती हैं। अमेरिका के राष्ट्रपति को जनता के द्वारा चुने गये निर्वाचक चुनते हैं। स्विट्ज़रलैंड की कौंसिल को वहाँ के व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाएँ चुनती हैं।

पुश्तैनी सर्वोच्च शासकों को छोड़कर भिन्न भिन्न देशों में सर्वोच्च शासकों का कार्यकाल अलग अलग होता है। भारतवर्ष के गवर्नर जनरल को इँगलैंड के सम्राट् पाँच बरस के लिए नियुक्त करते हैं। कुछ देशों के सर्वोच्च शासक बनने के लिए एक व्यक्ति, जितनी बार चाहे चुना जा सकता है; परंतु कुछ की व्यवस्था ऐसी नहीं होती। कोई व्यक्ति दो बार से अधिक अमेरिका का राष्ट्रपति नहीं चुना जा सकता।

प्रत्येक ऐसे देश में, जहाँ का शासनाधिकार एक मनुष्य के हाथ में होता है, सर्वोच्च शासक की सहायता के लिए एक समिति होती है। इँगलैंड में इस समिति को मंत्रिमंडल (Cabinet) कहते हैं। सम्राट् कॉमन सभा के बहुसंख्यक राजनीतिक दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करते हैं और प्रधान मंत्री की सिफ़ारिश पर अन्य मंत्रियों को। प्रधान मंत्री और अन्य मंत्री ही इँगलैंड और ब्रिटिश राज्य के वास्तविक शासक हैं। मंत्रिमंडल के सारे सदस्य लॉर्ड सभा (House of Lords) या कॉमन सभा (House of Commons) के सदस्य होते हैं। वे अपने कामों के लिए पार्लमेंट के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सम्राट् की प्रत्येक आज्ञा पर मंत्रि-मंडल के किसी न किसी मंत्री के हस्ताक्षर का होना आवश्यक है। हस्ताक्षर करके वह मंत्री सम्राट् की आज्ञा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। इँगलैंड के सम्राट् अपनी किसी सरकारी आज्ञा के लिए, किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होते।

अमेरिका के राष्ट्रपति की सहायता के लिए भी एक कार्य-कारिणी समिति होती है। उसके सारे सदस्यों को राष्ट्रपति स्वयं अपने इच्छानुकूल नियुक्त करते हैं। वे अपने कामों के लिए राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वे व्यवस्थापक मंडल के सदस्य नहीं होते और न हो सकते हैं। व्यवस्थापक मंडल का भी उन पर कोई अधिकार नहीं होता।

मंत्रिमंडल या कार्यकारिणी समिति ही, राज्य के भीतर और बाहर, उसके कामों के लिए कर्मचारी नियुक्त करती, तथा उनके

काम, वेतन आदि के नियम बनाती है। राज्य की समस्त जल, थल, और नभ सेना और युद्ध का सारा सामान उसी के अधिकार में रहता है। अन्य राज्यों से संबंध बनाये रखने, उनके यहाँ अपने राज्य के हितों की रक्षा करने आदि के लिए राजदूतों की नियुक्ति तथा उनसे मित्रता या युद्ध का निश्चय भी कार्यकारिणी समिति करती है। इस तरह यह विदित होता है कि कार्यकारिणी ही राज्य के क़ानूनों को व्यवहार में लाती है; उसमें शांति-व्यवस्था रखती तथा इसके लिए आवश्यकतानुसार सरकारी कर्मचारी और अधिकारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियुक्त करती है।

न्याय-विभाग—राज्य के क़ानूनों का वास्तव में क्या अर्थ है, यह बतलाना सरकार के न्याय-विभाग का काम है। क़ानून का अर्थ समझने में जहाँ कहीं मतभेद होता है वहाँ इसी विभाग के अधिकारी उसको स्पष्ट करते हैं। क़ानून के विरुद्ध काम करने-वालों के अपराध की मात्रा का निश्चय करके, उसके अनुसार क़ानून से निर्धारित दंड इसी विभाग के द्वारा दिया जाता है। संघ-सरकारों के अतिरिक्त अन्य सरकारों के न्याय-विभाग के अधिकारी क़ानून की जाँच नहीं कर सकते। वे यह नहीं कह सकते कि अमुक क़ानून ठीक है या नहीं, अथवा उसका अमुक अंश अनुचित है। उनका काम सरकारी क़ानून के अनुसार न चलनेवालों के कामों पर विचार करना होता है। न्याय-विभाग के द्वारा ही राजकीय नियमों का पालन और जनता में मान होता है। इस विभाग में बहुत से कर्मचारी, अधिकारी और न्यायाधीश होते हैं। उन सबको

क़ानून के समझने में योग्य ही नहीं होना चाहिये, वरन् दृढ़चरित्र और नितांत निष्पक्ष भी होना चाहिये। इसके बिना वे न्याय के प्रति लोगों में श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकते।

भिन्न भिन्न देशों के न्यायाधीश भिन्न भिन्न ढंग से नियुक्त किये जाते हैं। अधिकांश देशों में उनको नियुक्त करने का अधिकार सर्वोच्च शासक को होता है। इँगलैंड और अमेरिका के न्यायाधीशों को क्रमशः सम्राट् और राष्ट्रपति नियुक्त करते हैं। स्विट्ज़रलैंड के संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों को, व्यवस्थापक मंडल चुनता है। न्यायाधीशों का कार्यकाल सब देशों में समान नहीं होता है। साधारणतः न्यायाधीश, अवकाश ग्रहण करनेवाले नियमों के अंतर्गत अपने जीवन काल के लिए नियुक्त किये जाते हैं। मर्यादापूर्वक रहने के लिए उनको पर्याप्त वेतन मिलता है।

तीनों अंगों का परस्पर संबंध—यद्यपि सरकार के तीनों अंगों के काम अलग अलग हैं, तो भी उनका एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। कुछ विद्वानों का मत है कि सरकार के तीनों अंगों को एक दूसरे से बिल्कुल अलग होना चाहिये। यदि तीनों अंगों के काम एक ही व्यक्ति अथवा सभा के अधीन होंगे तो उस व्यक्ति अथवा सभा के निरंकुश हो जाने का भय है। यह मत कुछ अंश तक ठीक है। लेकिन सरकार के कामों को ऐसे क्षेत्रों में विभक्त करना, जिनका एक दूसरे से कुछ भी संबंध न हो, असंभव है। सरकार के तीनों अंग एक शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के समान हैं। जिस प्रकार शरीर के अंग अलग अलग काम करते

हुए भी मिलकर शरीर की रक्षा का काम करते हैं, उसी प्रकार सरकार के तीनों अंगों का अलग अलग कार्यक्षेत्र तो है, पर उन सबका मिलकर चलना भी परमावश्यक है। न्यायाधीश क़ानून के भंग करनेवाले को दंड अवश्य दे सकता है, परंतु उस दंड का प्रयोग, शासक-मंडल के अंतर्गत पुलिस और कारागार-विभाग की सहायता के बिना नहीं हो सकता। इस तरह न्याय की रक्षा शासक-मंडल के द्वारा होती है। न्याय-विभाग का सब व्यय, समस्त सरकारी व्यय की भाँति, व्यवस्थापक मंडल के स्वीकार करने पर ही हो सकता है। अतः न्याय-विभाग की स्थिति व्यवस्थापक मंडल की इच्छा पर निर्भर है। यदि न्याय-विभाग न हो तो व्यवस्थापक मंडल के द्वारा बनाये गये क़ानूनों का ठीक अर्थ जानना असंभव हो जाय और इस कारण शासक-मंडल को अपना कार्यक्षेत्र समझने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़े। इसलिए सरकार के इन तीनों अंगों का आपस में गहरा नाता है।

अभ्यास

१—राजतंत्र पर एक लेख लिखिये।

२—लोकतंत्र कितने प्रकार के होते हैं? उनका अंतर समझाइये।

३—एकात्मक और संघ-सरकार का भेद समझाकर लिखिये।

४—सभात्मक और अध्यक्षात्मक सरकारों को कैसे पहचाना जा सकता है?

५—शासन-विधान की परिभाषा लिखिये। क्या कोई देश शासन-विधान के बिना हो सकता है?

६—सरकार के भिन्न भिन्न अंगों का नाम लिखिये और यह बतलाइये कि उनमें परस्पर क्या संबंध है।

आठवाँ अध्याय

नागरिक के अधिकार और कर्तव्य

(Rights and Duties of Citizens.)

राज्य और नागरिक का संबंध—अधिकार और कर्तव्य का परस्पर संबंध—नागरिक के अधिकार—राज्य की ओर से समानता का व्यवहार, जीवन और संपत्ति की रक्षा, आर्थिक अधिकार, शिक्षा का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, विचार, भाषण और लेख की स्वतंत्रता का अधिकार, सभा करने का अधिकार, राजनीतिक अधिकार, अधिकारों की सीमा और उनका सदुपयोग—नागरिक के कर्तव्य—उपसंहार।

राज्य और नागरिक का संबंध—हम देख चुके हैं कि राज्य और नागरिक का घनिष्ट संबंध है। दोनों एक दूसरे के प्रति अधिकार (Rights) और कर्तव्य (Duties) के बंधन में बँधे हुए हैं। राज्य को चाहिये कि वह नागरिक की भलाई के लिए हर प्रकार के प्रयत्न करे और उसके जीवन को सुखमय बनावे। नागरिक को चाहिये कि राज्य के नियमानुकूल कामों में उससे सहयोग करे और उसकी, अपने कर्तव्यों के पालन करने में सहायता करे। इस अध्याय में हम विशेष रूप से नागरिक के अधिकारों और कर्तव्यों पर प्रकाश डालेंगे।

अधिकार और कर्तव्य का परस्पर संबंध—अधिकार किसे कहते हैं ? इस शब्द की सर्वमान्य परिभाषा बतलाना कठिन है। कुछ लोग ईश्वरीय प्राकृतिक अथवा जन्मसिद्ध अधिकारों पर ज़ोर दिया करते हैं और कुछ लोग क़ानूनी अधिकारों पर। सामान्यतः अधिकार शब्द का अर्थ है, हमारी वह शक्ति, जिसके कारण हम उन सब कामों को कर सकते हैं, जिनका करना हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है। यदि अपने विचारों को स्वतंत्रता पूर्वक प्रकट करने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति होती हो, तो स्वतंत्रता पूर्वक विचार प्रगट करना हमारा अधिकार है। प्रत्येक उन्नतिशील देश में जनता को ऐसी शक्ति स्वयं राजकीय नियमों से मिल जाती है। परंतु राजकीय नियम अभी तक कहीं भी पूर्ण नहीं हो पाये हैं। अतएव मनुष्य के क़ानूनी अधिकार भी अभी तक उस अवस्था में नहीं हैं जिसमें उनको वास्तव में होना चाहिये। यही कारण है कि कभी कभी क़ानूनों का विरोध करके भी लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं।

जहाँ अधिकार होते हैं वहाँ कर्तव्य भी होते हैं। अधिकार और कर्तव्य दोनों एक दूसरे के रूप हैं। यदि हमें कोई अधिकार दिया जाता है, तो उस अधिकार पर अमल करने का कर्तव्य भी हम पर लादा जाता है। यदि शिक्षा प्राप्त करना हमारा अधिकार है, तो उसकी व्यवस्था होने पर शिक्षित होना, हमारा कर्तव्य भी है। यही नहीं, हमारे अधिकारों के कारण, दूसरों पर भी अनेक बंधन लादे जाते हैं। यदि हमें किसी काम के करने का

अधिकार होता है, तो दूसरों पर यह बंधन होता है कि वे हमें उस काम को करने दें। अधिकार, कर्तव्य और बंधन तीनों का प्रत्यक्ष संयोग है।

नागरिक के अधिकार—सब देशों में नागरिकों के अधिकार एकसे नहीं होते हैं। यहाँ पर हम उन सबकी अलग अलग गिनती नहीं कर सकते। केवल इतना ही कह सकते हैं कि मनुष्य असंख्य अधिकारों की गठरी-मात्र है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसके अधिकार होते हैं। अधिकारों के बिना वह कुछ नहीं कर सकता। नीचे हम नागरिक के केवल उन्हीं अधिकारों का विवेचन करेंगे, जिनका वह राज्य की ओर से अधिकारी है।

(अ) राज्य की ओर से समानता का व्यवहार—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा किसी अन्य नागरिक के साथ। राज्य के सब नागरिक समान होते हैं। जाति-पाँति, घराने, धर्म, शरीर के रंग, संपत्ति आदि के कारण राज्य की दृष्टि में वे छोटे-बड़े नहीं हो सकते। इसलिए राजकीय व्यवहारों में जैसे, शिक्षा, चिकित्सा, नौकरी एवं अन्य सार्वजनिक वस्तुओं पर प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार होना चाहिये।

(ब) जीवन और संपत्ति की रक्षा—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसके जीवन और संपत्ति की रक्षा करे। यदि नागरिक का जीवन हमेशा खटके में रहता है और उसे इस बात का विश्वास नहीं होता कि वह अपनी संपत्ति को भोग सकेगा

तो उसका जीवन और संपत्ति दोनों एक प्रकार से व्यर्थ हो जाते हैं। अतएव प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसके जीवन की रक्षा, भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के शत्रुओं से करे, यहाँ तक कि उसे आत्महत्या तक न करने दे। राज्य को चाहिये कि वह नागरिकों को इस योग्य बनावे कि आवश्यकता पड़ने पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करके वे स्वयं अपने प्राणों की रक्षा कर सकें। संपत्ति की रक्षा उतनी ही आवश्यक है जितनी जीवन की रक्षा। संपत्ति के लोभ के कारण ही मनुष्य अपने काम में लगा रहता है। संपत्ति ही के लिए वह मेह और धूप, आग और धुआँ आदि का ख़याल न करके निरंतर मेहनत किया करता हैं। यदि उसे यह भय हो कि वह अपनी गाढ़ी कमाई को भोग न सकेगा और राज्य अथवा कोई व्यक्ति उससे उस संपत्ति को छीन लेगा, तो फिर किस आशा से वह अपना पसीना बहाकर धन कमाने की कोशिश करेगा ? ऐसी अवस्था में समाज की उन्नति रुक जाने की आशंका है। अतएव नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसके जीवन और संपत्ति दोनों की रक्षा करे।

(स) आर्थिक अधिकार—प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि वह अपनी जीविका कमाने के लिए कुछ न कुछ काम करे। यदि उसे कोई काम नहीं मिलता तो राज्य का कर्तव्य है कि उसे काम दिलावे और जब तक काम न मिल सके, उसके भरण-पोषण का प्रबंध करे। नागरिक का यह भी अधिकार है कि काम करने के बदले उसे मजदूरी मिले और उसे उचित समय से अधिक काम

न करना पड़े। कुछ देशों में मज़दूरों एवं नौकरों से तेरह या चौदह घंटे तक काम लिया जाता है। इतने अधिक काम से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। नागरिक का यह अधिकार है कि राज्य उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार न होने दे। कई देशों में अभी तक बेगार की प्रथा प्रचलित है। नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसे इस प्रकार के अत्याचार से बचावे।

(द) शिक्षा का अधिकार—नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसकी शिक्षा का समुचित प्रबंध करे। जब तक नागरिक शिक्षित न होगा, वह यह न जान सकेगा कि अमुक परिस्थिति में उसको क्या करना चाहिये। शिक्षा के बिना उसे अपने दायित्व का ठीक ठीक पता नहीं चल सकता। शिक्षा के ही सहारे मनुष्य अज्ञान को दूर करके अपने सारे काम समझ बूझकर करता है। यदि मनुष्य शिक्षित नहीं होते तो वे दूसरों के कहने में आकर सोचे समझे बिना ही ऐसे अनेक काम कर डालते हैं जिनके लिए पीछे से वे पछताया करते हैं। अतएव नागरिक का यह अधिकार है कि राज्य उसकी समुचित शिक्षा का प्रबंध करे।

(य) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार—नागरिक का अधिकार है कि धार्मिक बातों में उसे पूरी स्वाधीनता मिले। धर्म मनुष्य के विश्वास पर निर्भर होता है। उसके लिए वह प्राण तक देने को तैयार रहता है; परंतु उसे छोड़ने या उसके प्रतिकूल कुछ करने के लिए तैयार नहीं होता। धर्म के ही नाम पर भूतकाल में असंख्य मनुष्य मारे गये हैं और कुछ देशों में अब भी मारे जा रहे हैं।

इसलिए राज्य को चाहिये कि प्रत्येक नागरिक को धार्मिक स्वाधीनता दे और ऐसी व्यवस्था करे कि एक धर्मवाले दूसरे धर्मवालों पर अत्याचार न कर सकें। धार्मिक स्वाधीनता और धार्मिक सहिष्णुता के कारण ही नागरिक का जीवन सुखमय एवं विवाद-रहित हो सकता है। अतएव नागरिक का अधिकार है कि राज्य उसे धार्मिक स्वतंत्रता दे और इस स्वतंत्रता के उपयोग की समुचित व्यवस्था करे।

(र) विचार, भाषण और लेख की स्वतंत्रता का अधिकार—नागरिक का अधिकार है कि उसे विचार, भाषण और लेख की स्वतंत्रता हो। विचार की स्वतंत्रता के बिना मनुष्य कूप-मंडूक की भाँति पुरानी रूढ़ियों और पद्धतियों से छुटकारा नहीं पा सकता। विचार की स्वतंत्रता के पश्चात् ही मनुष्य बोलकर और लिखकर अपने विचारों को प्रकट करता है। अतएव विचार की स्वतंत्रता के साथ साथ भाषण और लेख की स्वतंत्रता भी होनी चाहिये। इसके बिना ।वचार-स्वातंत्र्य निरर्थक है। बोल और लिखकर ही, मनुष्य अपने दुःखों को प्रकट कर सकता है, अपनी असुविधाओं को राज्य के सम्मुख उपस्थित कर सकता है और यह जान सकता है कि उसके विचारों के संबंध में दूसरों का क्या मत है। इस प्रकार विचार-विनिमय के पश्चात् ही मनुष्य सच्चे और ठीक मार्ग पर आ सकता है। अतएव नागरिक का यह अधिकार है कि राज्य उसके विचार, भाषण और लेख की स्वतंत्रता का समुचित प्रबंध करे।

(ल) सभा करने का अधिकार—नागरिक का अधिकार है कि सभा आदि करके सर्वसाधारण के सामने वह अपने विचारों

को प्रकट कर सके, और सर्वसाधारण के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग से नागरिकों के अन्य अधिकारों की माँग उपस्थित कर सके। मनुष्य अपनी व्यक्तिगत् हैसियत से कुछ नहीं कर सकता। समाज का एक व्यक्ति समुद्र के एक बूँद के समान है; परंतु सार्वजनिक सभाओं द्वारा अन्य मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करके वह समुद्र की धारा की भाँति आगे बढ़ सकता है। अतएव विचार-विनिमय एवं अपनी आवश्यकताओं को ज़ोरदार बनाने के लिए नागरिक का यह अधिकार है कि उसे सभा आदि करने की स्वतंत्रता हो।

(व) राजनीतिक अधिकार—प्रत्येक नागरिक का अपने देश के शासन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कुछ न कुछ अधिकार होना उचित है। लोकतंत्र में तो इस अधिकार के बिना, मनुष्य पक्का नागरिक तक नहीं हो सकता। प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, वयस्क होते ही वोट देने का अधिकार मिलना चाहिये। उसे निर्वाचित सभाओं के सदस्य बनने की स्वाधीनता होनी चाहिये और उस पद पर नियुक्त किये जाने का अधिकार, जिसके योग्य वह हो। राजनीतिक अधिकारों के कारण नागरिक को अपनी महत्ता का पता चलता है। ग़रीब से ग़रीब और कमज़ोर से कमज़ोर आदमी भी निर्वाचन के दिन यह कहकर प्रसन्न होता है कि आज वोट के कारण, बड़े से बड़ा अदमी भी, मुझसे बात करने को तैयार है, और आज मेरे मत का वही मान है जो लखपती के मत का। इसलिए और इस कारण भी कि शासन-संबंधी प्रत्येक बात में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसका

कुछ न कुछ सहयोग हो, यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नागरिक के उपर्युक्त राजनीतिक अधिकार हों।

अधिकारों की सीमा और उनका सदुपयोग—नागरिक के जिन अधिकारों का ऊपर उल्लेख हुआ है वे सीमा-रहित नहीं हैं। कोई नागरिक यह नहीं कह सकता और न उसको कहना ही चाहिये कि मैं अपने अधिकारों पर मनमाना अमल करूँगा। उसे जीविका कमाने के लिए काम करने का अधिकार अवश्य है, पर वह सरकार से यह नहीं कह सकता कि मुझे अमुक ढंग का ही काम मिलना चाहिये। उसे शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार है, पर वह यह नहीं कह सकता कि मुझे अमुक अध्यापक ही पढ़ावें। इसे सीमा के साथ, प्रत्येक नागरिक का यह भी कर्तव्य है कि वह अपने अधिकारों का सदुपयोग करे। भाषण और लेख की स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं कि एक नागरिक दूसरे नागरिक को बदनाम करने अथवा गालियाँ देने लगे। ऐसी अवस्था में तो इस अधिकार के होने से, न होना ही अच्छा है। अतएव उपर्युक्त अधिकारों के साथ ही नागरिक का यह कर्तव्य भी है कि वह इन अधिकारों का सदुपयोग करे। राज्य का भी कर्तव्य है कि वह इन अधिकारों की समुचित व्यवस्था करे। इसमें संदेह नहीं कि अधिकार और कर्तव्य दोनों एक दूसरे के रूप हैं।

नागरिक के कर्तव्य—जिस प्रकार नागरिक के, राज्य के प्रति, अधिकार होते हैं और राज्य के, उसके प्रति कर्तव्य, उसी प्रकार राज्य के, नागरिक के प्रति, अधिकार होते हैं और नागरिक

के उसके प्रति कर्तव्य। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राज्य के प्रति पूरी निष्ठा रखे; उससे द्रोह न करे; तथा उसकी शांति और व्यवस्था में गड़बड़ी न पैदा करे। इतना ही नहीं, इनकी रक्षा में सरकार की सहायता भी करे। राज्य के क़ानूनों को प्रत्येक नागरिक को मानना चाहिये। आजकल प्रायः सर्वत्र नागरिकों के प्रतिनिधि ही राजकीय नियम बनाते हैं। ये नियम जनता के हित के लिए होते हैं। इसलिए इनका पालन करना सर्वथा उचित है। हाँ, यदि कोई क़ानून व्यवहार में लोक के लिए अहितकर सिद्ध हुआ हो तो उसके हटाने या परिवर्तन कराने का वैध आंदोलन करना अनुचित नहीं। राज्य के अंतर्गत अगणित सरकारी कामों और कर्मचारियों के वेतन के लिए धन की आवश्यकता होती है। यह धन राज्य के विविध करों से एकत्र होता है। यदि राज्य-कर न हों तो सरकार चल ही नहीं सकती। अतएव प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि राज्य-कर देने में आनाकानी न करे और न किसी तरह से धोखा ही दे। ईमानदारी हर एक नागरिक का आवश्यक गुण है। राज्य-कर देने में भी अपनी प्रेरणा से ही इसका पालन होना चाहिये।

देश की रक्षा करना भी प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। सभी देशों में विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा करने और देश के भीतर व्यवस्था एवं शांति रखने के लिए सरकारी सेना होती है। परंतु यह सेना प्रायः अपर्याप्त होती है। इसलिए दंगा, राज्यक्रांति या विदेशी शत्रु के आक्रमण के समय अपने देश की रक्षा करने के

लिए, आवश्यकता पड़ने पर हर एक समर्थ नागरिक को सेना में भरती होकर युद्ध करने से न हिचकिचाना चाहिये। इसके साथ ही ऐसे अवसरों पर आवश्यक धन, युद्ध-सामग्री, खाद्य पदार्थ आदि से सहायता करना भी नागरिकों का धर्म है। नागरिकों को चाहिये कि वे घायलों की चिकित्सा, रखवाली आदि के लिए भी उपयुक्त प्रबंध करें।

इनके अतिरिक्त प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह राज्य के अनेक विभागों के कर्मचारियों को उनके कर्तव्य-पालन में सहयोग दे। जनता के प्रतिनिधियों को चाहिये कि वे नियम बनाते समय दृढ़ता, निःस्वार्थ और विवेक के अनुसार काम करें और जाति, संप्रदाय, धर्म आदि के संकुचित विचारों से अपने मत को दूषित न होने दें। न्यायाधीशों के न्याय को मानना भी नागरिकों का कर्तव्य है।

उपसंहार—इस अध्याय में हमने नागरिकों के कुछ अधिकारों और कर्तव्यों का विवेचन किया है। इनसे यह न समझना चाहिये कि नागरिक के अन्य अधिकार और कर्तव्य हैं ही नहीं। यहाँ तो हमने केवल राजकीय जीवन के कुछ अधिकारों और कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है। उनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि यदि राज्य और नागरिक अपने अपने अधिकारों और कर्तव्यों का पालन करें तो नागरिक का जीवन सचमुच सुखमय हो सकता है।

अभ्यास

१—अधिकार की परिभाषा लिखिये और यह बतलाइये कि अधिकार और कर्तव्य में क्या संबंध है।

२—नागरिक के आर्थिक अधिकारों को समझाकर लिखिये।

३—नागरिक के राजनीतिक अधिकारों पर एक लेख लिखिये।

४—"मनुष्य अधिकारों की गठरी-मात्र है"—इस वाक्य को समझाइये।

५—नागरिक के राज्य के प्रति कौन कौन से कर्तव्य हैं ?

नवाँ अध्याय

देश-प्रेम और विश्व-शांति

देश-प्रेम—देश-प्रेम प्रगट करने के ढंग—देश-प्रेम और मानवता—हमारा देश-प्रेम।

देश-प्रेम—जिस देश में कोई मनुष्य और उसके पूर्वज पैदा हुए तथा पले हों; जहाँ उसकी संतति पैदा होती, पाली-पोसी जाती और रहती हो, वही उसका स्वदेश है। जहाँ कोई जाकर बस जाता है और जीवन बिताता है, वह भी उसका स्वदेश है। वहीं की हवा में साँस लेकर वह जीता है; वहीं का पानी पीता, अन्न खाता और वस्त्र पहनता है; वहीं की मिट्टी-पत्थर से घर बनाता है और उसमें आराम से रहता है; वहीं नित्यप्रति व्यवसाय करता है; खेती, मेहनत, मज़दूरी जैसे शारीरिक या अध्ययन-अध्यापन जैसे मस्तिष्क-संबंधी कार्य करता है। वहीं वह जन्म लेता और वहीं शरीर त्यागता है। इस तरह उसकी सभी लौकिक आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ और आशाएँ वहीं पूरी होती हैं। इसलिए स्वदेश से आत्मीयता का अनुभव करना और मानना मनुष्यमात्र के लिए स्वाभाविक है।

स्वदेश केवल भूमि का एक छोटा या बड़ा टुकड़ा, अथवा शासन-पद्धति विशेष द्वारा व्यवस्थित भौगोलिक रचना ही नहीं है। वह मनुष्य जाति की अनेक पीढ़ियों और उसके असंख्य विचार-

शील और शक्ति-संपन्न महापुरुषों का क्रम क्रम से बनाया हुआ एक सांस्कृतिक संगठन भी है। इस तरह स्वदेश प्रकृति की दी हुई भूमि, जल-वायु तथा उसके सब तरह के नैसर्गिक सौंदर्य के साथ ही उसके निवासियों की बहुत दिनों की बनायी हुई, राज्य-सत्ता एवं उनकी विद्या-बुद्धि, सभ्यता तथा संस्कृति का विस्तृत रूप भी है। इतना ही नहीं, स्वदेश मनुष्य का अपना और पूर्वजों का ही नहीं है; वरन् आगे आनेवाले वंशजों का भी है। जैसे वह पुरखों के महान् कर्मों, चरित्र और आदर्श का स्मारक है और जीवित लोगों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का साधन है वैसे ही वह भावी संतति का भी आधार है। वहीं मनुष्य की परंपरागत धन-संपत्ति एवं विद्या और ज्ञान के भंडार हैं। इसलिए स्वदेश का प्रेम, उसके रहनेवाले सभी व्यक्तियों के लिए, स्वाभाविक है और उचित भी।

स्वदेश-प्रेम एक उच्च आदर्श है। इसी के कारण मनुष्य आत्म-त्याग करके, विविध कष्टों को सहता हुआ, अपने देशवासियों की भलाई में संलग्न हो जाता है। वह अपने को एक बड़े कुटुंब का सदस्य समझता है और अपने देशवासियों के प्रति उसी नाते व्यवहार करता है। जैसे अपने छोटे से परिवार के लिए लोग स्वार्थ का त्याग करने में आगापीछा नहीं करते और उसकी उन्नति में सदा प्रयत्नशील रहते हैं, वैसे ही स्वदेश के विस्तृत कुटुंब की दुर्दशा और विपत्ति के समय, व्यक्तिगत् हितों की उपेक्षा करके प्रत्येक देश-प्रेमी उसके कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करता है। देश-प्रेम

के ही कारण सबल निर्बलों को ऊपर उठाते हैं और जाति-पाँति, धर्म आदि के विचारों को छोड़ लोकहित-साधक कार्यों में लग जाते हैं। देश-प्रेम ही के कारण, मनुष्य कुल, कुटुंब और जाति से परे समस्त देशवासियों के साथ भ्रातृत्व का संबंध स्थापित करता है।

देश-प्रेम प्रगट करने के ढंग—साधारणतः मनुष्य अपने संकुचित कार्यक्षेत्र में इतना फँसा होता है कि वह विस्तृत संसार को भुला देता है। फिर भी वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से देश की सेवा किया ही करता है। मेरे देश का तहस-नहस न हो, वह सदा स्वतंत्र बना रहे, उसका सम्मान बढ़ता रहे, उसकी उन्नति होती रहे, उसमें यथेष्ट सुधार होते रहें और उसमें रहनेवालों का स्वास्थ्य और सुख बढ़े, इन्हीं इच्छाओं, आशाओं और आकांक्षाओं के कारण मनुष्य, शांति-काल में तरह तरह की लोक-सेवा के काम करता हुआ अपने देश-प्रेम का परिचय देता है। पर युद्ध-काल में देश-प्रेम का सच्चा और नग्न रूप दिखायी पड़ता है। किस उत्साह के साथ मनुष्य अपनी जान हथेली पर रखकर, मुस्कराता हुआ, माता, पिता, स्त्री और बच्चों से बिदा होकर देश की रक्षा के लिए रणक्षेत्र को प्रस्थान करता है? किस प्रेम से प्रेरित हो माता अपने पुत्र को, स्त्री अपने पति को, बहिन अपने भाई को, धनी अपने धन को और गुणी अपने गुण को देश की वेदी पर भेंट करते हैं? युद्ध में हमारे देश की विजय से हमारा उत्साह बढ़ता है, और पराजय से दुःख। इन्हीं, और ऐसे अनेक भावों और कामों के द्वारा हम अपना देश-प्रेम प्रगट करते हैं।

देश-प्रेम और मानवता—इसमें संदेह नहीं कि देश-प्रेम हमें हमारे छोटे से घेरे से ऊपर उठाता है, और हममें देश के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति भ्रातृत्व का भाव जगाता है। परंतु वह मानव जीवन का सबसे ऊँचा आदर्श नहीं है। नागरिक होने के पहले प्रत्येक व्यक्ति मनुष्य होता है। अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि देश-प्रेम के कारण वह मानवता को भुला न दे। सच्चा देश-प्रेम विश्व-प्रेम का स्थानीय रूप है। इससे हर नागरिक का कर्तव्य है कि विश्व-प्रेम के अंतर्गत देश-प्रेम से प्रेरित हो; और देश-प्रेम के बहाने न तो अन्य मनुष्यों का वध करे और न अन्य देशों पर आक्रमण करे। ऐसी अवस्था में ही अंतर्राष्ट्रीय युद्धों का अंत होगा और मानवता के भाव के कारण विश्व-शांति स्थापित होगी।

हमारा देश-प्रेम—भारतवासियों का देश-प्रेम सारे संसार में विदित है। शताब्दियों से यह देश पराधीन है। विदेशी लोग इसे कई बार जीत चुके हैं। आज भी यह स्वतंत्र नहीं, इँगलैंड के अधीन है। इस पराधीन अवस्था में भारतीय नेता और उनके अनुयायी हमेशा से देश को स्वतंत्र बनाने का प्रयत्न करते आये हैं। महाराणा प्रतापसिंह और छत्रपति शिवाजी के नाम इस संबंध में उल्लेखनीय हैं। किस साहस और वीरता के साथ महाराणा प्रताप मुग़ल सम्राट् से लड़े थे और महाराज शिवाजी हिंदू-राज्य स्थापित कर सके थे ? किस साहस से प्रेरित हो राजपूत रमणियाँ जौहर किया करती थीं और पुरुष केसरिया वस्त्र धारण

करके रणक्षेत्र में कूद पड़ते थे ? इन बातों का विवरण पढ़कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। पर इन दिनों महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी के काल की भाँति, हिंदुओं और मुसल्मानों का विरोध नहीं है। उन दोनों पर एक तीसरी जाति का प्रभुत्व स्थापित है। उसको हटाने के लिए वे दोनों उत्सुक हैं।

भारतीय स्वतंत्रता का युद्ध लगभग बीस साल से जारी है। यह युद्ध अन्य युद्धों सा नहीं है। गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग और सत्याग्रह के द्वारा भारतवर्ष को स्वतंत्र बनाने का नया मार्ग दिखाया है। इसी मार्ग का अनुसरण करके हज़ारों भारतवासी हँसते हँसते कारागार भोग चुके हैं और भोगते जाते हैं। अब भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसा राष्ट्रवादी नेता हो, जो कुछ दिन जेल की चहारदीवारी के भीतर न रह चुका हो। आज भारतवर्ष के असंख्य गाँवों में महात्मा गांधी का नाम विदित है और छोटे छोटे बच्चे भी झंडा-गीत गाते हैं। देश-प्रेम के कारण भारतवासी जेल जाते हैं, लाठियों के प्रहार सहते हैं, पुलिस के डंडों की मार खाते हैं, गोलियों की बौछार के सामने खड़े हो जाते हैं, अपनी संपत्ति का अपहरण कराते हैं और अपने सुख और आनंद पर लात मारकर नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं।

लेकिन फिर भी हमारा देश-प्रेम वैसा नहीं जैसा होना चाहिये। आवश्यकता इस बात की है कि यहाँ के रहनेवाले सभी स्त्री-पुरुष यह समझने लगें कि यह हमारा देश है और यही हमारी मातृ-भूमि है। यहाँ के हिंदू तो इसको अपना सर्वस्व मानते हैं, और

ईसाई, पारसी और बहुत से मुसल्मान भी इसी विचार के हैं। परंतु भ्रम या कुछ अन्य कारणों से कुछ लोग अभी तक पूर्णतया इसके अनुकूल नहीं कहे जा सकते। भारतीय राष्ट्रीय उत्थान के लिए यह परमावश्यक है कि भारतवर्ष के समस्त निवासी इसको ही अपना देश मानें। साथ ही यह समझ लें कि इसी की उन्नति में हमारा वास्तविक कल्याण है। उन्हें अपने निजी लाभ या हित के कारण कोई ऐसा काम न करना चाहिये जिससे देश का अहित हो। उन्हें विदेशी शासन को मज़बूत बनानेवाला कोई काम न करना चाहिये। यह समझ लेना सभी भारतीय नागरिकों का प्रथम धर्म है कि देश-द्रोह से बढ़कर कोई पाप दुनिया में नहीं है, और देश की उन्नति तथा रक्षा के लिए जो कुछ भी त्याग करना पड़े, वह थोड़ा है। अपनी खोयी हुई स्वतंत्रता को फिर से प्राप्त करने के लिए मिलकर उद्योग करना और उसी के लिए जीना और आवश्यकता पड़े तो उसी के लिए मर जाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

अभ्यास

१—"स्वदेश के साथ आत्मीयता का अनुभव करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है"। क्यों?

२—"देश-प्रेम विश्व-प्रेम का स्थानीय रूप है"। इस वाक्य को समझाइये।

३—भारतवासियों के देश-प्रेम पर एक निबंध लिखिये।

दसवां अध्याय

नागरिक भाव और सुखमय जीवन

सुखमय जीवन—नागरिक भाव—नागरिक भाव की पाठशालाएँ—भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति—सुव्यवस्थित और प्रगतिशील समाज—सुखमय जीवन की प्राप्ति।

सुखमय जीवन—सुखमय जीवन की कल्पना विविध देशों में भिन्न भिन्न है। कुछ देशों के निवासी एक प्रकार के वस्त्र पहनते हैं और कुछ के दूसरे प्रकार के। कहीं एक प्रकार का भोजन रुचिकर समझा जाता है और कहीं दूसरे प्रकार का। कहीं पर जीवन के आदर्श तथा ध्येय एक प्रकार के होते हैं और कहीं पर दूसरे प्रकार के। पर इन भिन्नताओं के होते हुए भी समस्त देशों के निवासी, समान रूप से सुखमय जीवन के इच्छुक होते हैं।

नागरिक भाव (Civic Sense)—सुखमय जीवन का प्रथम साधन नागरिक भाव है। मनुष्य समाज में रहता है। उसे अपने ही समान प्राणियों से मिलजुल कर रहना पड़ता है। अतएव प्रत्येक नागरिक में साहचर्य के भाव का होना आवश्यक है। दूसरे लोगों से मिले और उनका सहयोग प्राप्त किये बिना वह कुछ नहीं कर सकता। इसके लिए व्यवहार में सत्यता, निष्कपटता, उदारता आदि गुणों का होना आवश्यक है। सभी देशों के नेता इन्हीं गुणों के कारण जनता को अपनी ओर आकृष्ट कर सके हैं। इन्हीं

गुणों पर लोगों की निजी शांति और उन्नति निर्भर है। इसलिए नागरिक भाव के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक में वे सब गुण हों जिनके कारण उसकी वृद्धि हो और वे दुर्गुण न हों जिनके कारण उसे तथा दूसरों को क्लेश मिले या उनकी अवनति हो। इन बातों का यदि सब लोगों को ध्यान रहे और सब उनकी प्राप्ति के लिए आप से आप लगे रहें तो कोई भी देश स्वर्ग जैसा आदर्श देश हो सकता है और उसके नागरिकों का जीवन सुखमय जीवन हो सकता है।

नागरिक भाव की पाठशालाएँ—नागरिक भाव की सर्व प्रथम पाठशाला कुटुंब है। यहीं पर बालक-बालिकाओं को वह शिक्षा मिलती है जो उनके हृदय पर अंकित हो जाती है और जिसे वे कभी भुला नहीं सकते। यदि उनके माता-पिता छोटी छोटी बातों के लिए नहीं लड़ते; यदि वे धैर्य और साहस से काम करते हैं और बालक-बालिकाओं के सम्मुख त्याग, सहानुभूति और सम्मान के आदर्श रखते हैं; यदि वे बड़ों के प्रति आदर और छोटों के प्रति समवेदना का व्यवहार करते हैं; तो उनके बालक-बालिकाओं में वे गुण आप ही आप, बिना सिखाये, आ जाते हैं। यदि उनका व्यवहार इसके विपरीत होता है तो बच्चों के हृदय पर भी वही बातें अंकित हो जाती हैं। कुछ घरों के बालक नौकरों को गालियाँ देते हैं, बड़ों का कहना नहीं मानते और सोचे-विचारे बिना रूढ़ियों के अनुसार काम करने लगते हैं। यदि खोज की जाय तो अंत में यही पता चलेगा कि इन दुर्गुणों की ज़िम्मेदारी उनके कौटुंबिक

जीवन पर ही है। इसलिए प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह अपने बच्चों के सम्मुख उच्च आदर्श रखे, जिससे उनमें नागरिक भाव जगें और बड़े होने पर वे देश के सच्चे नागरिक बन सकें।

नागरिक भाव की दूसरी पाठशाला स्कूल है। यहाँ पर बालक-बालिकाएँ अपने ही समान अन्य बालक-बालिकाओं के संपर्क में आते हैं। उनका, उनके साथ कौटुंबिक संबंध तो नहीं होता; फिर भी दिन में ६ या ७ घंटे वे एक दूसरे के साथ रहते हैं; परस्पर हँसते-खेलते हैं, बातचीत करते हैं, मित्रता करते हैं और दुश्मनी भी। यहीं पर खेल के मैदानों में वे सहकारिता और उद्योग का पाठ पढ़ते हैं और दर्जों में अनुशासित होकर बैठने का पाठ। यहीं पर वे सफ़ाई आदि की आदतें डालते हैं, स्कूल के नाम के लिए लड़ते हैं, छोटे बालकों की सहायता करते हैं और अध्यापकों का सम्मान। यहीं पर वे कसरत आदि करके अपने शरीर को पुष्ट करने का पाठ पढ़ते हैं, और स्काउटिंग और गर्लगाइड के समुदायों द्वारा लोक-सेवा का पाठ। कुटुंब के पश्चात् स्कूल ही ऐसी संस्था है, जहाँ नागरिक जीवन के प्रायः सभी अंगों की शिक्षा आरंभिक अवस्था में मिलती है। सच्चे नागरिक बनाने में स्कूल का स्थान कुटुंब के समान है और बालक-बालिकाओं में नागरिक भाव जगाने के लिए अध्यापक की ज़िम्मेदारी उतनी ही है जितनी माता-पिता की।

नागरिक भाव की तीसरी पाठशाला स्वयं संसार है। जब विद्यार्थी शिक्षा समाप्त करके जीवन में पदार्पण करते हैं, तब उन्हें सैकड़ों ऐसी बातें मालूम होती हैं, जो अन्यथा न मालूम होतीं।

संसार की कठिन समस्याओं के सुलझाने में उन्हें अपने सिद्धांतों का संशोधन करना पड़ता है। संसार ही वह पाठशाला है जहाँ मनुष्य को वास्तविकता का पता चलता है। वहीं ठोकर खा खाकर वह सहयोग और समझौते का पाठ पढ़ता है। कभी कभी किसी सांसारिक दबाव के कारण, वह नागरिक भाव के विरुद्ध भी आचरण करता है; पर ऐसा करने में न तो उसके साथी उसका मान करते हैं, और न स्वयं उसकी ही आत्मा को संतोष होता है। अतएक जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रत्येक मनुष्य में नागरिक भाव का होना आवश्यक है।

हमारा देश बहुत दिनों से परतंत्र रहा है। गत् ५० साल से क्रमशः हममें राष्ट्रीयता का भाव जग रहा है। अब हमें कुछ अंश तक शासन का अधिकार भी मिल गया है। इसलिए हममें से हर एक को अपने व्यक्तिगत् और सामाजिक आचरण को ऐसा बनाना चाहिये जो राष्ट्र-निर्माण में सहायक हो और हममें स्वराज्य को प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा करने की क्षमता उत्पन्न करे। नागरिक भाव के बिना ऐसा होना संभव नहीं, अतएव अन्य स्वतंत्र देशों की अपेक्षा, हमारे देशवासियों में नागरिक भाव का होना अधिक आवश्यक है।

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति—सुखमय जीवन की दूसरी आवश्यकता है भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति। इसके बिना नागरिक भाव का जगना असंभव है। जब मनुष्य को पेट भर भोजन, पहने को कपड़ा और रहने को पर्याप्त स्थान नहीं

मिलता, तब यह आशा करना कि वह उदार, निष्कपट, त्यागी और परहितदर्शी हो, व्यर्थ है। भूख के कारण मनुष्य कोई भी काम, चाहे वह कितना ही नीच क्यों न हो, करने में नहीं हिचकता। पेट भर खाना न पाकर वह दुर्बल हो जाता है, पर्याप्त वस्त्र न पाने से वह बीमार हो जाता है, और स्थान के अभाव के कारण उसके जीवन में स्थिरता नहीं आती। इस तरह नागरिक भाव के जागृत करने और मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने के लिए भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति परमावश्यक है। यही नागरिक भाव और सुखमय जीवन का आधार है।

सुव्यवस्थित और प्रगतिशील समाज—सुखमय जीवन की तीसरी आवश्यकता है सुव्यवस्थित और प्रगतिशील समाज। यदि समाज सुव्यवस्थित नहीं होता तो मनुष्य का जीवन आशंकाओं में व्यतीत होता है। यदि समाज प्रगतिशील नहीं होता तो मनुष्य की उन्नति रुक जाती है और उसका जीवन उत्साहहीन हो जाता है। सुखमय जीवन के लिए यह आवश्यक है कि समाज सुव्यवस्थित रूप में प्रगतिशील हो, अव्यवस्थित रूप में नहीं। नागरिक शास्त्र की दृष्टि से मनुष्य की उन्नति का सच्चा मार्ग विकास है, क्रांति नहीं।

सुखमय जीवन की प्राप्ति—यदि किसी देश के निवासियों में नागरिक भाव विद्यमान है, उनकी भौतिक आवश्यकताएँ समुचित रूप से पूर्ण होती हैं और उनका समाज सुव्यवस्थित तथा प्रगतिशील है तो उनका जीवन सचमुच सुखमय जीवन हो

सकता है। पर हमें यह न भूलना चाहिये कि सुखमय जीवन एक आदर्श है। मनुष्य कितने ही सुख से क्यों न हो, वह उससे बढ़कर सुखमय जीवन का स्वप्न देखा करता है उसके विचार में वर्तमान जीवन सुखमय जीवन नहीं कहा जा सकता। सुखमय जीवन या तो भूतकाल में था या भविष्य में होगा।

अभ्यास

१—नागरिक भाव पर एक लेख लिखिये।

२—सुखमय जीवन का क्या तात्पर्य है?

३—नागरिक भाव और सुखमय जीवन का संबंध अच्छी तरह समझाइये।

४—"भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति नागरिक भाव और सुखमय जीवन का आधार है"। इसको स्पष्ट कीजिये।

द्वितीय खंड

भारतीय शासन-पद्धति

ग्यारहवाँ अध्याय

भारतीय शासन-विकास

ईस्ट इंडिया कंपनी—रेग्यूलेटिंग एक्ट—पिट् का इंडिया एक्ट—१७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ के चार्टर एक्ट—सिपाही-विद्रोह और १८५८ का एक्ट—भारतीय कौंसिलस एक्ट १८६१ और १८९२—भारतीय कांग्रेस का जन्म—मॉर्ले-मिंटो एक्ट—युरोपीय महासमर और भारत-मंत्री की घोषणा—सुधारों के कार्यान्वित रूप की जाँच, साइमन कमीशन—१९२९ से १९३५ तक।

ईस्ट इडिया कंपनी—१५ वीं शताब्दी के अंत से पुर्तगाल और उसके बाद हॉलैंड के निवासी भारतवर्ष से व्यापार करने लगे थे। उनके लाभ को देखकर इँगलैंड के कुछ व्यापारियों ने ईस्ट इंडिया कंपनी नाम का एक व्यापारिक संघ बनाया और सन् १६०० में महारानी एलिज़ाबेथ का आज्ञापत्र पा, भारतवर्ष से व्यापार करने लगे। कुछ दिनों के बाद इस कंपनी ने अन्य युरोपीय कंपनियों के साथ साथ भारतीय राजाओं और शासकों के झगड़ों में भाग लेना आरंभ किया। इस प्रकार भारतवर्ष के कई प्रदेश उसके अधीन हो गये। सन् १७६५ में बंगाल, बिहार और उड़ीसा में कंपनी का राज था। फिर भी उसकी आर्थिक अवस्था संतोषप्रद न थी। अतएव इँगलैंड की पार्लमेंट ने कंपनी के शासन का निरीक्षण आरंभ किया और सन् १७७३ ई० में इस

संबंध में रेग्यूलेटिंग एक्ट (Regulating Act) नाम का प्रथम एक्ट पास किया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट—भारतीय शासन-विकास, रेग्यूलेटिंग एक्ट से आरंभ होता है। उसके पूर्व कंपनी के भारतीय अधिकारों का शासन तीन स्वतंत्र केंद्रों (कलकत्ता, बंबई और मद्रास) से हुआ करता था। रेग्यूलेटिंग एक्ट से इस व्यवस्था का अंत हुआ। अब बंगाल का गवर्नर, कंपनी के भारतीय अधिकारों का गवर्नर जनरल बना दिया गया। उसकी सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल बनायो गयी, और उसके बहुमत के अनुसार शासन करने का नियम बनाया गया। एक सर्व-प्रधान न्यायालय (Supreme Court) भी स्थापित किया गया। इसके न्यायाधीश इँगलैंड के सम्राट् द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इस न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश-सहित चार न्यायाधीश थे। गवर्नर जनरल द्वारा बनाये गये नियम और उपनियम तब तक लागू न होते थे जब तक इस न्यायालय में उनकी रजिस्ट्री न हो जाय।

पिट् का इंडिया एक्ट—कार्यरूप में रेग्यूलेटिंग एक्ट अनेक दोषों से परिपूर्ण सिद्ध हुआ। एक्ट की धाराओं के अनुसार यह कहना कठिन था कि कंपनी के भारतीय प्रदेशों के लिए सबसे अधिक अधिकार किसको है, गवर्नर जनरल को या कौंसिल को या सर्वप्रधान न्यायालय को ? अतएव सन् १७८१ के संशोधन एक्ट द्वारा नियमों के रजिस्ट्री किये जाने की व्यवस्था मिटा दी गयी। सन् १७८४ में पिट् के इंडिया एक्ट के अनुसार गवर्नर

जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या घटाकर तीन कर दी गयी, और कंपनी के भारतीय मामलों की देखभाल करने के लिए नियंत्रण-संघ (Board of Control) और गुप्त समिति (Secret Committee) नाम की दो नयी समितियाँ बनायी गयीं। इन दोनों कमेटियों ने कंपनी के संचालकों (Directors) के बहुत से अधिकार छीन लिये। इसी एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल के युद्ध और संधि-संबंधी अधिकार बढ़ाये गये, और यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रांतीय गवर्नर, गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना न तो देशी राजाओं से किसी प्रकार का समझौता कर सकेंगे, न उनके प्रतिकूल युद्ध छेड़ सकेंगे और न प्रांत की सेना और मालगुज़ारी को युद्ध के लिए इस्तेमाल कर सकेंगे।

१७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ के चार्टर एक्ट— पिट् के इंडिया एक्ट के पश्चात्, सन् १७९३ में, कंपनी को बीस बरस तक भारत में व्यापार करने का एकाधिकार मिला। इस साल के आज्ञापत्र के अनुसार भारतीय शासन-पद्धति में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं किया गया। सन् १८१३ में कंपनी को दूसरा आज्ञापत्र मिला। उसके अनुसार कंपनी का, भारत में व्यापार करने का, एकाधिकार छिन गया और इस प्रकार इँगलैंड के अन्य व्यापारियों को भारतवर्ष में व्यापार करने का अवसर मिला। इसी आज्ञापत्र से भारत में अँगरेज़ों को बसने और ईसाई धर्म के प्रचार करने का स्वत्व मिला। सन् १८३३ के आज्ञापत्र द्वारा कंपनी को व्यापारिक अधिकारों से हाथ धोना पड़ा और उसका काम केवल

शासन करना रह गया। अँगरेज़ों के अतिरिक्त अन्य युरोपीय जातियों को यहाँ बेरोक-टोक आने, बसने और ज़मीन ख़रीदने की स्वतंत्रता मिली। गवर्नर जनरल की कौंसिल में भी एक सदस्य बढ़ा, जिसका नाम क़ानून-मंत्री (Law-Member) रखा गया और अन्य प्रांतों का नियम बनाने का अधिकार छीन लिया गया। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि धर्म, घराने अथवा जाति के कारण कोई भी व्यक्ति किसी सरकारी पद से वंचित न रखा जायगा। सन् १८५३ के आज्ञापत्र के अनुसार कंपनी के शासन की अवधि अनिश्चित छोड़ दी गयी। गवर्नर जनरल बंगाल के शासन के भार से मुक्त कर दिये गये और उस प्रांत के लिए एक लेफ्टिनेंट गवर्नर की व्यवस्था की गयी। क़ानून-मंत्री का दर्जा अन्य मंत्रियों के दर्जे के समान हो गया, और नियम-निर्माण के लिए गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर बारह कर दी गयी।

सिपाही-विद्रोह और १८५८ का एक्ट—सन् १८५८ में सिपाही-विद्रोह के कारण, पार्लमेंट ने भारतीय शासन-संबंधी एक नया एक्ट पास किया। इस एक्ट के अनुसार, भारतीय शासन की बागडोर महारानी विक्टोरिया के हाथ में आ गयी, नियंत्रण संघ (Board of Control) तोड़ दिया गया और भारतीय शासन की देखभाल करने के लिए भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल का जन्म हुआ। इसी साल की पहली नवंबर को महारानी विक्टोरिया ने अपनी प्रसिद्ध घोषणा प्रकाशित की। उसके अनु-

सार उन्होंने यह वचन दिया कि सरकारी ओहदों पर धर्म, जाति अथवा घराने का विचार न करके केवल योग्य व्यक्ति ही नियुक्त किये जायँगे और सरकार न तो धार्मिक बातों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करेगी और न गोद लेने के विषय में।

भारतीय कौंसिल्स एक्ट, १८६१ और १८९२—सन् १८५८ तक व्यवस्थापक सभाओं को छोड़कर भारतीय शासन-पद्धति की रूप-रेखा एक प्रकार से निश्चित हो चुकी थी। स-कौंसिल भारत-मंत्री (Secretary of State-in-Council) भारतीय शासन की देख-भाल करने लगे थे, और गवर्नर जनरल अपनी कौंसिल की सहायता से भारतीय शासन का संचालन करते थे। सन् १८६१ और १८९२ के एक्टों के अनुसार भारतीय और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाएँ भी बनने लगीं। सन् १८६१ में, नियम बनाने के लिए, गवर्नर जनरल की कौंसिल में कम से कम छः और अधिक से अधिक बारह सदस्यों के बढ़ाने की व्यवस्था की गयी और यह स्पष्ट कर दिया गया कि मनोनीत सदस्यों में से कम से कम आधे ग़ैर-सरकारी व्यक्ति होंगे और उनका कार्यकाल दो बरस होगा। मनोनीत सदस्यों को नियम-निर्माण में केवल परामर्श देने का अधिकार था। इसी एक्ट के अनुसार बंबई और मद्रास की सरकारों को अपने अपने प्रांतों के लिए नियम बनाने का अधिकार मिला और इसके लिए उनके गवर्नरों को कम से कम चार और अधिक से अधिक आठ सदस्यों के मनोनीत करने का अधिकार दिया

गया। मनोनीत सदस्यों में से आधे सदस्यों का ग़ैर-सरकारी होना आवश्यक था।

सन् १८९२ के कौंसिल्स एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल को कम से कम दस और अधिक से अधिक बीस सदस्यों के मनोनीत करने का अधिकार मिला। इस एक्ट के अनुसार गवर्नर जनरल को निर्वाचन-प्रथा चलाने का भी अधिकार मिला। अतएव लॉर्ड लैंसडाउन के शासन-काल में परोक्ष निर्वाचन-प्रणाली जारी की गयी। इसके अनुसार पहले उम्मेदवार चुने जाते थे, फिर इन्हीं चुने हुए व्यक्तियों में से गवर्नर जनरल व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को मनोनीत करते थे। इसी एक्ट के अनुसार व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को प्रश्न पूछने और बजट पर बहस करने का भी अधिकार मिला। इस प्रकार सन् १८९२ तक भारतीय और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं की भी नींव पड़ गयी।

भारतीय कांग्रेस का जन्म १८८५—सन् १८९२ के एक्ट के सात बरस पूर्व सन् १८८५ में भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ। पश्चिमी शिक्षा, आने-जाने के साधनों के सुभीते, आर्य-समाज, ब्रह्मसमाज आदि धार्मिक आंदोलनों, समाचार-पत्रों और अँगरेज़ी नीति के प्रति असंतोष के कारण दूर दूर प्रांत में रहने-वाले भारतवासियों में राष्ट्रीय एकता का भाव फैला। लोग फिर से पुराना गौरव प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुए। जगह जगह अनेक राजनीतिक संस्थाएँ बनीं। इनमें सबसे प्रधान संस्था भारतीय कांग्रेस थी। आरंभ में उसका उद्देश्य देश-हित के लिए काम

करनेवालों को मिलाना, आपसी भेदभाव को दूर करना और सामाजिक सुधार के यत्न करना ही था। अतएव उन दिनों अँगरेज़ और सरकारी अधिकारी उसके साथ थे। परंतु कुछ दिनों पश्चात् वह दादाभाई नैरोजी के प्रभाव से शुद्ध राजनीतिक संस्था हो गयी। अब वह सरकार की नीति की तीव्र आलोचना करने लगी। उसका प्रभाव नित्यप्रति बढ़ने लगा और आगे चलकर उसका तथा सरकार का संघर्ष भी आरंभ हुआ।

मॉर्ले-मिंटो एक्ट—भारतीय कांग्रेस और अन्य राजनीतिक संस्थाओं के असंतोष के कारण सन् १९०९ में भारतीय शासन-सुधार-संबंधी एक नया एक्ट बना। उस समय के भारत-मंत्री लॉर्ड मॉर्ले और गवर्नर जनरल लॉर्ड मिंटो के नाम पर इसका नाम मॉर्ले-मिंटो एक्ट पड़ा। इस एक्ट के अनुसार भारतीय और प्रांतीय सभाओं का आकार बढ़ा, निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ी, सांप्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था की गयी और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं में ग़ैर-सरकारी सदस्यों का आधिक्य स्थापित किया गया। इन सुधारों के आसपास भारतवासी भारत-मंत्री और गवर्नर जनरल की कौंसिलों के सदस्य नियुक्त किये जाने लगे थे। इन सुधारों के पहले ही सन् १९०७ में, सूरत के अधिवेशन में, कांग्रेस गरमदल (Extremists) और नरमदल (Moderates) दो भागों में विभक्त हो चुकी थी और गरमदलवाले कांग्रेस से अलग हो गये थे। नरमदलवालों ने मॉर्ले-मिंटो सुधारों का स्वागत किया, और गरमदलवालों ने विरोध। व्यवहार में

इस एक्ट द्वारा प्राप्त अधिकार किसी राष्ट्रीय विचारवाले भारत-वासी को संतुष्ट न कर सके।

युरोपीय महासमर और भारत-मंत्री की घोषणा—सन् १९१४ में युरोपीय महासमर आरंभ हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के सदस्य होने के नाते, भारतवर्ष ने मित्र-राष्ट्रों (Allies) का पक्ष ग्रहण किया और धन-जन दोनों से उनकी सहायता की। इन्हीं दिनों भारतवर्ष में स्वराज्य (Home Rule) आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। भारत-सरकार ने उसे दबाने के लिए दमन-नीति बरती। फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन दिन पर दिन अधिकाधिक प्रबल होता गया। अतएव भारतीयों को शांत करने के लिए भारत-मंत्री ने अगस्त सन् १९१७ में ब्रिटिश सरकार की भारतीय नीति की निम्नलिखित घोषणा की—

"सम्राट् की सरकार की यही नीति है और भारत-सरकार भी इससे पूर्णरूप से सहमत है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करके, साम्राज्य के अंतर्गत भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन की स्थापना करने के लिए स्वशासन-संबंधी संस्थाएँ क्रमशः उन्नतिशील बनायी जायँ। यह नीति, जहाँ तक संभव हो, शीघ्र ही विचार-विनिमय द्वारा कार्यरूप में परिणत की जाय और मैं (भारत-मंत्री) वाइसराय के निमंत्रण पर भारतवर्ष में जाकर वाइसराय और भारत-सरकार के सहयोग से प्रांतीय सरकारों, प्रतिनिधि संस्थाओं और अन्य मनुष्यों और संस्थाओं का परामर्श लूँ और उन पर विचार करूँ। मैं (भारत-

मंत्री) यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस नीति की प्रगति धीरे धीरे होगी और ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार ही, जो भारतीयों के हित और उन्नति के लिए ज़िम्मेदार हैं, यह निश्चित करेंगे कि कब और कितना क़दम आगे बढ़ाना चाहिये।"

१६१६ के सुधार—इस घोषणा के आधार पर भारतीय शासन-सुधार-संबंधी सन् १६१६ का एक्ट बना। इसके द्वारा किये गये परिवर्तनों का वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे। यहाँ पर केवल इतना ही जान लेना चाहिये कि भारतीय नरमदल ने सुधारों को अपर्याप्त कहते हुए भी, उनका स्वागत किया, परंतु भारतीय गरमदल ने सुधारों का जवाब असहयोग आंदोलन से दिया। पंजाब की दुर्घटनाओं और ख़िलाफ़त के प्रश्न के कारण इस आंदोलन ने और भी ज़ोर पकड़ा। कांग्रेसवादियों की राय में नये सुधार अपर्याप्त, असंतोषप्रद और निराशाजनक थे। युरोपीय महासमर के काल में गरमदलवाले पुनः कांग्रेस से मिल गये थे। सन् १६२० में कांग्रेस में दूसरा विच्छेद हुआ। इस बार कांग्रेस पर गरमदल ने अपना अधिकार जमा लिया और नरमदल उससे अलग हो गया।

सुधारों के कार्यान्वित रूप की जाँच; साइमन कमीशन—इधर उग्रदलवाले असहयोग आंदोलन के चलाने में लगे थे और उधर नरमदलवाले सुधारों को कार्यरूप में परिणत कर रहे थे। उनके कार्यरूप की जाँच दो बार की गयी—सन् १६२४ में मुडीमैन कमेटी (Mudiman Committee) द्वारा और सन् १६२६ में

साइमन कमीशन (Simon Commission) द्वारा। साइमन कमीशन को भावी शासन-विधान के संबंध में सिफ़ारिश करने का भी अधिकार दिया गया था। उसमें एक भी भारतीय सदस्य न था। प्रायः सारे देश में कमीशन का बहिष्कार हुआ। जहाँ कहीं कमीशन जाता था, वहीं 'साइमन लौट जाओ' (Simon go back) के नारे लगाये जाते थे। अंत में जून सन् १९३० में कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और भारतवर्ष में असंतोष की मात्रा बढ़ी।

१९२९ से १९३५ तक—सन् १९२९ से १९३५ तक के छः बरस भारतीय राजनीतिक इतिहास में बड़े महत्व के हैं। ३१ अक्टूबर सन १९२९ को भारतीय गवर्नर जनरल लॉर्ड अर्विन ने सन् १९१७ की घोषणा का अर्थ समझाते हुए यह घोषित किया कि "सन् १९१७ की घोषणा का अर्थ असंदिग्ध रूप से यह है कि भारतवर्ष को अंत में उपनिवेश का दर्जा (Dominion Status) मिले"। इसी घोषणा में उन्होंने गोलमेज़ परिषद् (Round Table Conference) के बुलाने का भी वादा किया। ब्रिटिश सरकार की इच्छा थी कि पार्लमेंट में पेश होने के पहले, भारतीय शासन-सुधार की योजना पर गोलमेज़ परिषद् विचार करे और अधिक से अधिक सहमति प्राप्त होने पर, सुधार-संबंधी प्रस्ताव पार्लमेंट में पेश किया जाय। इस घोषणा से भारतीय नरमदल तो संतुष्ट हो गया, पर गरमदल ने इसका उत्तर सविनय अवज्ञा आंदोलन (Civil Disobedience Movement) और पूर्ण स्वतंत्रता से दिया।

१२ नवंबर सन् १९३० को प्रथम गोलमेज़ परिषद् बड़े समा-रोह से लंदन में आरंभ हुई। उसमें प्रधान मंत्री (Prime Minister) ने संघ-राज्य (Federation), संरक्षणों सहित उत्तर-दायी शासन (Responsible Government with Safe-guards), प्रांतीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) आदि के सिद्धांतों को स्वीकार किया। फलस्वरूप भारतवर्ष में भी कुछ चहल-पहल हुई। अब तक कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन और पूर्ण स्वतंत्रता में लगी हुई थी और भारत-सरकार कांग्रेस के दमन करने में। प्रथम गोलमेज़ परिषद् के पश्चात् भारत-सर-कार और कांग्रेस में समझौता हुआ। इस समझौते को अर्विन-गांधी समझौता कहते हैं। इनके अनुसार सरकार ने अपनी दमननीति और अहिंसात्मक राजनीतिक बंदियों को छोड़ देने का वचन दिया और कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को बंद करने का। दूसरी गोलमेज़ परिषद् में महात्मा गांधी भारतीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से सम्मिलित हुए। पर कांग्रेस के मतानु-कूल वे कुछ भी न कर सके। उनके इँगलैंड से लौटने के पूर्व ही भारतीय परिस्थिति भयानक हो गयी। कांग्रेस ने कर-बंदी आंदो-लन जारी किया और सरकार ने दमन। समझौते के सभी प्रयत्न अब निष्फल सिद्ध हुए। तीसरी गोलमेज़ परिषद् का कांग्रेस ने पुनः बहिष्कार किया।

आख़िरकार भारतीय शासन-सुधार की योजना तैयार हो गयी। भारत-सरकार की दमननीति भी आंदोलन को दबाने में

सफल हुई। गोलमेज़ परिषदों के द्वारा बनायी गयी योजना प्रस्ताव के रूप में पार्लमेंट में पेश की गयी और कुछ परिवर्तनों के बाद पार्लमेंट की दोनों सभाओं ने उसे स्वीकार किया। २ अगस्त सन् १९३५ को सम्राट् की भी अनुमति मिल गयी। इस प्रकार भारतीय शासन-संबंधी १९३५ का एक्ट बना।

अभ्यास

१—भारतीय व्यवस्थापक मंडल के विकास पर एक निबंध लिखिये।

२—भारतीय कांग्रेस का जन्म कब हुआ? आरंभ में उसके क्या उद्देश्य थे?

३—निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये—

रेग्यूलेटिंग एक्ट, भारतीय कांग्रेस, पिट् का इंडिया एक्ट, मॉर्ले-मिंटो एक्ट, भारत-मंत्री की सन् १९१७ की घोषणा और साइमन कमीशन।

बारहवाँ अध्याय

मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार

प्राक्कथन—भारतीय शासन के दो अंग—भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल—केंद्रीय शासन—गवर्नर जनरल और उनकी कौंसिल, गवर्नर जनरल के अधिकार, गवर्नर जनरल का स्थान—केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल—व्यवस्थापक मंडल का संगठन, निर्वाचकों और उम्मेदवारों की योग्यताएँ, व्यवस्थापक मंडल के अधिकार, कौंसिल-ऑफ़-स्टेट और असेंबली का संबंध—वर्तमान केंद्रीय शासन—प्रांतीय सरकार—गवर्नर, कौंसिल और मंत्रि-मंडल, द्वैध शासन-प्रणाली, प्रांतीय व्यवस्थापक सभा के अधिकार—स्थानीय स्वराज्य—नरेंद्र मंडल—उपसंहार।

प्राक्कथन—सन् १९१९ के शासन-सुधारों को मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार भी कहते हैं। उनकी सब बातों का वर्णन करना यहाँ पर आवश्यक नहीं। सन् १९३५ के सुधारों के कारण सन् १९१९ के सुधार ऐतिहासिक घटनामात्र हो गये हैं। फिर भी शासन-विकास की दृष्टि से उनका वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है, खासकर इसलिए कि भारतवर्ष का केंद्रीय शासन अब तक उन्हीं सुधारों के अनुसार संगठित है।

भारतीय शासन के दो अंग—आरंभ ही से भारतीय शासन के दो अंग रहे हैं—एक इँगलैंड में और दूसरा भारतवर्ष में। सम्राट्, ब्रिटिश पार्लमेंट, मंत्रि-मंडल, भारत-मंत्री और उनकी

कौंसिल इँगलैंड में हैं, और गवर्नर जनरल, उनकी कार्यकारिणी समिति, केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल, प्रांतीय गवर्नर, उनकी कार्य-कारिणी समितियाँ, प्रांतीय व्यवस्थापक सभाएँ आदि भारतवर्ष में। भारतीय शासन-पद्धति के समझने के लिए भारतीय शासन के उपर्युक्त दोनों अंगों का ज्ञान आवश्यक है।

भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल (Secretary of State and his Council)—सम्राट्, मंत्रि-मंडल, पार्लमेंट आदि भारत-मंत्री की ही सलाह से भारतीय शासन की देख-भाल करते हैं। इस दृष्टि से भारतीय शासन में भारत-मंत्री का पद बड़े महत्व का है। सन् १९३५ के एक्ट के अनुसार भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन अवश्य कर दिये गये हैं, पर इस स्थान पर हम केवल सन् १९१९ के सुधारों का वर्णन करेंगे, और यहाँ पर यह बतलावेंगे कि उनके अनुसार भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल की क्या स्थिति थी।

क़ानूनी दृष्टि से सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार, भारत-मंत्री, भारतीय शासन के सर्वोच्च अधिकारी थे और गवर्नर जनरल के लिए, उनकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य था। वे स्वयं पार्लमेंट और मंत्रि-मंडल के सदस्य थे। उनकी सहायता के लिए एक पार्लमेंटरी उपमंत्री और एक स्थायी उपमंत्री होता था। यदि भारतमंत्री पार्लमेंट की एक सभा के सदस्य होते थे, तो पार्लमेंटरी उपमंत्री दूसरी सभा का। सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार भारत-मंत्री और उनके कार्यालय का वेतन इँगलैंड के कोष से दिया

जाने लगा। इस परिवर्तन के कारण भारत-मंत्री पर पार्लमेंट का निरीक्षण पहले की अपेक्षा कुछ अधिक हो गया।

भारत-मंत्री की सहायता के लिए इंडिया कौंसिल नामक एक सभा पहले ही से चली आती थी। सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार यह निश्चित किया गया कि इस कौंसिल के कम से कम आठ और अधिक से अधिक बारह सदस्य हों और उनका कार्यकाल केवल पाँच बरस हो। इस बात पर भी ज़ोर दिया गया कि जहाँ तक संभव हो अधिक भारतवासी कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये जायँ। कौंसिल का काम पूर्ववत् परामर्श देना ही बना रहा, किंतु सिविल सर्विस आदि कुछ विषयों में भारत-मंत्री के लिए, कौंसिल का बहुमत मानना अनिवार्य कर दिया गया। कौंसिल के सदस्य सम्राट् द्वारा अपने पद से केवल उसी समय हटाये जा सकते थे, जब पार्लमेंट की दोनों सभाएँ सम्राट् से इस आशय की प्रार्थना करें।

सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार क़ानूनी दृष्टि से, भारतीय सुशासन के लिए, भारत-मंत्री की ज़िम्मेदारी पार्लमेंट के प्रति पूर्ववत् बनी रही; किंतु वास्तव में उनके निरीक्षण के शिथिल किये जाने की व्यवस्था की गयी। संयुक्त पार्लमेंटरी कमेटी ने ऐसी प्रथाओं (Conventions) के चलाने पर ज़ोर दिया था जिनके कारण हस्तांतरित विषयों के शासन में भारत-मंत्री, जहाँ तक संभव हो, किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। संरक्षित और केंद्रीय विषयों के संबंध में भी ऐसी प्रथाओं के चलाने पर ज़ोर दिया गया था जिनके कारण विशुद्ध भारतीय विषयों में, यदि गवर्नर जनरल और

व्यवस्थापक सभाएँ एकमत हों, तो भारत-मंत्री कुछ आवश्यक बातों को छोड़कर साधारणतः उनको अपने इच्छानुकूल काम करने दें और उनके कामों में हस्तक्षेप न करें।

केंद्रीय शासन (Central Government)—गवर्नर जनरल और उनकी कौंसिल (Governor General and his Council)—सन् १९१९ के एक्ट द्वारा केंद्रीय सरकार अर्थात् भारत-सरकार में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। गवर्नर जनरल अब भी इसके अध्यक्ष थे और उनको वाइसराय की उपाधि और अधिकार प्राप्त थे। उनकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी समिति (Executive Council) थी। उसके सदस्यों की संख्या अनिश्चित थी और आवश्यकतानुसार बढ़ायी घटायी जा सकती थी। एक्ट के अनुसार यह व्यवस्था की गयी थी कि कौंसिल के कम से कम तीन सदस्य ऐसे हों जो दस वर्ष तक सरकारी नौकरी कर चुके हों, और एक ऐसा हो जो या तो इँगलैंड या आयरलैंड का बैरिस्टर या स्कॉटलैंड का एडवोकेट या ऐसा भारतीय वकील हो जो दस बरस से किसी हाईकोर्ट में वकालत कर रहा हो। कौंसिल के कितने सदस्य भारतीय हों, यह अनिश्चित छोड़ दिया गया था। कार्यरूप में साधारणतः तीन सदस्य भारतीय हुआ करते थे। कौंसिल का काम आठ विभागों (अर्थ-विभाग, गृह विभाग, नियम विभाग, उद्योग तथा श्रम विभाग, स्वास्थ्य, शिक्षा और भूमि विभाग, रेल और वाणिज्य विभाग, पर-राष्ट्र विभाग और सेना विभाग) में विभक्त था। प्रत्येक विभाग

एक कौंसिलर के अधीन था। हर एक विभाग का एक कार्यालय था। उसके कर्मचारी उस विभाग के सचिव की सहायता करते थे। कौंसिल का अधिवेशन प्रति सप्ताह एक बार अवश्य होता था। गवर्नर जनरल स्वयं कौंसिल के प्रधान थे, और उनकी अनुपस्थिति में, उन्हीं द्वारा नियुक्त उप-प्रधान प्रधान का काम करता था। कौंसिल का निर्णय बहुमत के आधार पर हुआ करता था, पर गवर्नर जनरल को बहुमत के प्रतिकूल भी देश की भलाई के लिए, अपने इच्छानुकूल काम करने का अधिकार था। कौंसिल के सभी साधारण सदस्य, गवर्नर जनरल की सिफ़ारिश पर और भारत-मंत्री की अनुमति से, सम्राट् द्वारा पाँच बरस के लिए नियुक्त किये जाते थे।

गवर्नर जनरल के अधिकार (Powers of Governor General)—कौंसिल संबंधी अधिकारों के अतिरिक्त गवर्नर जनरल को और भी अधिकार प्राप्त थे। व्यवस्थापक सभाओं के अधिवेशन कराना, उनका भंग करना, उनका कार्यकाल बढ़ाना या घटाना उनके अधीन था। वे व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में भाषण दे सकते थे। देश की शांति और सुव्यवस्था के लिए वे ऑर्डिनेंसें जारी कर सकते थे और किसी प्रस्ताव को सर्टीफाई (Certify) करके उसे क़ानून का रूप दे सकते थे। गवर्नर जनरल की अनुमति बिना कोई प्रस्ताव एक्ट नहीं बन सकता था। उन्हें अधिकार था कि किसी प्रस्ताव के संबंध में अपनी अनुमति दें या न दें, या उसे रद कर दें, या उसे सम्राट् की अनुमति के लिए रिज़र्व कर दें।

प्रांतीय शासन के संबंध में भी गवर्नर जनरल के कई अधिकार थे। प्रांतीय सरकारों के लिए स-कौंसिल गवर्नर जनरल (Governor General-in-Council) की आज्ञा का मानना अनिवार्य था। संरक्षित विषय (Reserved Subjects) पूर्णतया उनके अधीन थे, पर हस्तांतरित विषयों (Transferred Subjects) में उनका निरीक्षण शिथिल कर दिया गया था। संयुक्त पार्लमेंटरी कमेटी ने ऐसी प्रथाओं के चलाने पर ज़ोर दिया था जिनके कारण, यदि किसी विशुद्ध प्रांतीय विषय में गवर्नर और प्रांतीय व्यवस्थापक सभा एकमत हों, तो जहाँ तक हो सके गवर्नर जनरल उनके कामों में हस्तक्षेप न करें।

वाइसराय की हैसियत से भी गवर्नर जनरल को कई अधिकार प्राप्त थे। वे भारतवर्ष में सम्राट् के प्रतिनिधि-रूप थे। अतएव भारतीय शासन में सम्राट् की अनुपस्थिति के कारण वे उनके अधिकारों का भी उपयोग करते थे। इस हैसियत से वे देशी नरेशों से कर वसूल करते थे और उन अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकते थे जिन्हें प्राणदंड की सज़ा मिली हो।

गवर्नर जनरल का स्थान (Position of Governor General)—पूर्वोक्त अधिकारों के कारण, भारतीय शासन में गवर्नर जनरल का स्थान बड़े महत्व का था। भारत के अन्य पदाधिकारियों की अपेक्षा उनका प्रभाव कहीं अधिक था। बहुतेरी बातें उनके व्यक्तित्व पर निर्भर होती थीं। प्रभावशाली गवर्नर जनरल भारत-मंत्री से भी अपने इच्छानुकूल काम करवाते थे,

और इस प्रकार प्रायः मनमाना शासन करते थे। कार्यरूप में, गवर्नर जनरल के साधारण तथा असाधारण अधिकारों और भारतीय परिस्थिति में बहुत कुछ संबंध था।

केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल (Central Legislature)—सन् १९१९ के एक्ट के द्वारा केंद्रीय व्यवस्थापिका (Legislature) में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। अभी तक केंद्रीय व्यवस्थापिका की केवल एक ही सभा थी। अब उसकी दो सभाएँ कर दी गयीं। एक का नाम कौंसिल-ऑफ़-स्टेट रखा गया और दूसरी का लेजिस्लेटिव असेंबली। इनको क्रमशः बड़ी सभा और छोटी सभा भी कहते हैं। लेजिस्लेटिव असेंबली को कभी कभी केवल असेंबली ही कहा जाता है।

केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल का संगठन (Composition of Central Legislature)—सन् १९१९ के सुधारों द्वारा केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी थी, और निर्वाचित सदस्यों का आधिक्य स्थापित किया गया था। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के कुल ६० सदस्य थे—३३ निर्वाचित और २७ मनोनीत। असेंबली के कुल १४४ सदस्य थे—१०३ निर्वाचित और ४१ मनोनीत। चुनाव सांप्रदायिक आधार पर किया जाता था। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट का कार्यकाल पाँच बरस था और असेंबली का तीन बरस। गवर्नर जनरल किसी सभा के कार्यकाल को बढ़ा घटा सकते थे। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट का सभापति उसके सदस्यों से, गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता था और असेंबली

का सभापति, उसके सदस्यों में से उन्हीं के द्वारा चुना जाता था। व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के अधिकार समान थे, पर आर्थिक विषयों के प्रस्ताव सिर्फ़ असेंबली में पेश किये जाते थे।

निर्वाचकों और उम्मेदवारों की योग्यताएँ (Qualifications of Voters and Candidates)—सन् १९१९ के एक्ट के कारण निर्वाचकों की संख्या बढ़ायी गयी थी, पर भारतीय जन-संख्या के देखते हुए, बढ़े हुए निर्वाचकों की संख्या भी बहुत कम थी। संयुक्तप्रांत में कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के चुनाव के लिए उन व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार दिया गया था जो निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा के अंदर रहते हों, और निम्नलिखित शर्तों में से किसी एक या अधिक को पूरा करते हों—

(अ) ऐसी ज़मीन के मालिक हों जिसकी सालाना माल-गुज़ारी ५००० रुपये या अधिक हो।

(ब) १०००० रुपये सालाना पर आय-कर देते हों।

(स) किसी व्यवस्थापक सभा के सदस्य हों।

(द) किसी म्युनिसिपिल्टी या ज़िला बोर्ड के सभापति रहे हों या हों।

(य) किसी विश्वविद्यालय के कोर्ट या सेनेट के सदस्य हों और

(फ) महामहोपाध्याय या शमशुलउल्मा की उपाधि पाये हुए हों।

संयुक्तप्रांत में भारतीय असेंबली के लिए उन व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार था, जो निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा के अंदर

रहते हों और निम्नलिखित शर्तों में से किसी एक या अधिक को पूरा करते हों—

(अ) १५० रुपये या अधिक सालाना मालगुज़ारी देते हों।

(ब) १५० रुपये सालाना लगानवाली भूमि के अधिकारी हों।

(स) ऐसे मकान के मालिक या किरायेदार हों, जिसका सालाना किराया १८० रुपये हो।

(द) १०० रुपये या अधिक की आमदनी पर म्युनिसिपल कर देते हों और

(प) भारत-सरकार को आय-कर देते हों।

वे व्यक्ति जो ब्रिटिश प्रजा नहीं थे, जिनकी अवस्था २१ वर्ष से कम थी या जो उपयुक्त न्यायालय द्वारा पागल ठहराये गये थे या जिनका नाम वोटरों की सूचो में न था, वोट देने के अधिकार से वंचित रखे गये थे।

कोई भी व्यक्ति जिसका नाम वोटरों की सूची में लिखा हो, जिसकी अवस्था २५ वर्ष की हो, और जो सरकारी नौकर न हो, कौंसिल-ऑफ़-स्टेट या असेंबली के चुनाव के लिए उम्मेदवार हो सकता था। वे दिवालिये जो अपना भुगतान न कर सके हों, उम्मेद-वारी के अधिकार से वंचित कर दिये गये थे। वे वकील जो किसी न्यायालय द्वारा वकालत करने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हों और वे व्यक्ति जो किसी फौजदारी अपराध के लिए एक साल से अधिक या देश निकाले की सज़ा पाये हुए हों, किसी व्यवस्थापक सभा के उम्मेदवार नहीं हो सकते थे, जब तक प्रांतीय

सरकारें उनको इसकी आज्ञा न दें। फौजदारी अपराध के कारण दंड पाये हुए मनुष्य सज़ा के समाप्त होने के पाँच वर्ष पश्चात् प्रांतीय सरकार की अनुमति के बिना भी उम्मेदवार हो सकते थे।

व्यवस्थापक मंडल के अधिकार (Powers of Central Legislature)—सन् १९१९ के शासन-विधान के अनुसार कुछ बातों में व्यवस्थापक मंडल के अधिकार भी बढ़ाये गये थे। वह शासन-निरीक्षण कर सकता था; पर अविश्वास के प्रस्ताव पास करके शासक-मंडल (Executive) को अपने पद से हटा नहीं सकता था। वह देश के सुशासन के लिए शासन-विधान के अंतर्गत नियम बना सकता था, लेकिन गवर्नर जनरल की अनुमति बिना उसके द्वारा पास किया गया कोई भी प्रस्ताव नियम नहीं बन सकता था। उसे बजट पर वाद-विवाद करने और उसकी कुछ मदों पर वोट देने का भी अधिकार दिया गया था। जिन मदों पर असेंबली को वोट देने का अधिकार था, वे समस्त आय की लगभग १५ प्रतिशत् थीं। परंतु गवर्नर जनरल को अधिकार था कि व्यवस्थापक सभा द्वारा अस्वीकृत किसी माँग को वे स्वयं मंज़ूर कर दें, और असाधारण परिस्थितियों में, देश की शांति और सुव्यवस्था की रक्षा के लिए स्वयं आवश्यकतानुकूल रुपये ख़र्च कर सकें।

कौंसिल-ऑफ़-स्टेट और असेंबली का संबंध—किसी प्रस्ताव के क़ानून बनने के लिए यह आवश्यक था कि व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाएँ उसे पास करें। दोनों सभाओं के मतभेद को मिटाने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गयी थी—

(अ) किसी सभा में पास होने के पूर्व प्रस्ताव को दोनों सभाओं की एक संयुक्त कमेटी के विचाराधीन करना।

(ब) दोनों सभाओं के बराबर प्रतिनिधियों का सम्मेलन जिसमें मतभेद की धाराओं पर विचार करके समझौता कराया जा सके और

(स) दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन। इसके कराने का अधिकार गवर्नर जनरल को था। संयुक्त अधिवेशन के बहुमत का निर्णय, दोनों सभाओं का निर्णय होता था।

वर्तमान केंद्रीय शासन (Present Central Government)—सन् १९१९ के शासन-विधान द्वारा संगठित केंद्रीय शासन का विवरण, हमने कुछ विस्तारपूर्वक लिखा है। इसका कारण यह है कि आजकल का केंद्रीय शासन वही है जिसकी व्यवस्था सन् १९१९ के एक्ट में की गयी थी। सन् १९३५ का शासन-विधान पास अवश्य हो गया है, और उसका कुछ भाग कार्यरूप में परिणत भी कर दिया गया है, पर केंद्रीय शासन अभी तक पूर्ववत् बना हुआ है। नये शासन-विधान में यह व्यवस्था की गयी है कि जब तक संघ-सरकार स्थापित न हो तब तक सन् १९१९ एक्ट के अनुसार संगठित भारत-सरकार के प्रांतों के प्रति वही अधिकार और कर्तव्य होंगे जो संघ-सरकार के। अतएव आज केंद्रीय सरकार का वही रूप है जो सन् १९१९ के शासन-विधान द्वारा निश्चित किया गया था, पर प्रांतीय स्वराज्य (Provincial Autonomy) के स्थापित होने के कारण उसके अधिकार पहले की अपेक्षा कुछ कम हो गये हैं।

प्रांतीय शासन (Provincial Governments)—सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रांतीय शासन में सबसे अधिक परिवर्तन किये गये थे। प्रांतों में ही उत्तरदायी शासन का श्रीगणेश किया गया था। प्रांतीय विषय (Provincial Subjects) दो भागों में विभक्त किये गये थे—(१) संरक्षित विषय (Reserved Subjects) और (२) हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects)। हस्तांतरित विषयों में ही उत्तरदायी शासन स्थापित करने की व्यवस्था की गयी थी।

गवर्नर, कौंसिल और मंत्रिमंडल (Governor, Executive Council and Ministry)—सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार, प्रांत के सर्वोच्च पदाधिकारी को गवर्नर कहते थे। संरक्षित विषयों का शासन वे कौंसिल के परामर्श से करते थे। कौंसिल के अधिक से अधिक चार सदस्य होते थे और उनमें से एक ऐसा अवश्य होता था जिसे कम से कम बारह बरस की सरकारी नौकरी का अनुभव हो। प्रांतीय गवर्नर कौंसिल के सभापति थे। कौंसिल के सब निर्णय, बहुमत के आधार पर होते थे; परंतु प्रांत की शांति और सुव्यवस्था की रक्षा के लिए गवर्नर को कौंसिल के बहुमत के प्रतिकूल भी काम करने का अधिकार था। संरक्षित विषयों के शासन के लिए, प्रांतीय गवर्नर, गवर्नर जनरल और भारत-मंत्री के प्रति उत्तरदायी थे।

प्रांतीय गवर्नर हस्तांतरित विषयों का शासन, मंत्रियों के परामर्श से करते थे। साधारणतः गवर्नर मंत्रियों को व्यवस्थापक

सभा के निर्वाचित सदस्यों में से नियुक्त करते थे। मंत्री लोग अपनी नीति और कामों के लिए व्यवस्थापक सभाओं के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतीय व्यवस्थापक सभाएँ अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा उन्हें अपने पद से हटा सकती थीं। गवर्नरों का साथ देना भी उनके लिए अनिवार्य था। वे मंत्रियों के परामर्श के प्रतिकूल भी आवश्यकतानुसार काम कर सकते थे। इस कारण मंत्रियों की अवस्था एक प्रकार से शोचनीय थी। प्रांतीय गवर्नरों और व्यवस्थापक सभाओं में विरोध होने पर यदि वे व्यवस्थापक सभा का साथ देते थे तो गवर्नर उनको निकाल सकते थे और यदि गवर्नरों का साथ देते थे तो व्यवस्थापक सभाएँ अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा उनको अपने पद से हटा सकती थीं।

द्वैध शासन-प्रणाली (Diarchy)—उपर्युक्त शासन-प्रणाली का नाम द्वैध शासन-प्रणाली था। इसके अनुसार हस्तांतरित विषयों में प्रांतीय सरकार प्रांतीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी थी और संरक्षित विषयों में ब्रिटिश सरकार के प्रति। कार्यरूप में यह प्रणाली अनेक दोषों से परिपूर्ण सिद्ध हुई। अतएव नये शासन-विधान के अनुसार प्रांतीय शासन में इसका अंत कर दिया गया है।

प्रांतीय व्यवस्थापक सभाएँ (Provincial Legislative Councils)—सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे। प्रत्येक प्रांत में एक व्यवस्थापक सभा स्थापित की गयी थी, जिसमें ग़ैर-

सरकारी निर्वाचित सदस्यों का आधिक्य था। निर्वाचित सदस्य तीन प्रकार के निर्वाचन-क्षेत्रों से चुने जाते थे। (१) साधारण, (२) सांप्रदायिक और (३) विशेष। प्रत्येक व्यवस्थापक सभा का सभापति, उसके सदस्यों द्वारा चुना गया एक सदस्य होता था। व्यवस्थापक सभाओं का चुनाव तीन बरस के लिए होता था। निर्वाचकों की योग्यताएँ भिन्न भिन्न प्रांतों में भिन्न भिन्न थीं। संयुक्तप्रांत में उन सब व्यक्तियों को वोट देने का अधिकार था जो निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा के अंदर रहते थे और निम्नलिखित शर्तों में से एक या अधिक को पूरा करते थे—

(अ) ऐसे मकान के मालिक या किरायेदार जिसका सालाना किराया ३६) रुपये या अधिक हो।

(ब) ऐसे व्यक्ति जो २०० रुपये सालाना या अधिक आमदनी पर म्युनिसिपल टैक्स देते हों।

(स) ऐसे व्यक्ति जो भारत-सरकार को आय-कर देते हों।

(द) ऐसे व्यक्ति जो २५ रुपये या अधिक सालाना माल-गुज़ारी की भूमि के मालिक हों।

(ह) वे व्यक्ति जो ५० रुपये या अधिक लगानवाली भूमि के अधिकारी हों और

(च) वे व्यक्ति जो भारतीय सेना के पेंशन पानेवाले अफ़सर या सैनिक हों।

वे व्यक्ति जो ब्रिटिश प्रजा नहीं थे, जिनकी अवस्था २१ वर्ष से कम थी, जो उपयुक्त न्यायालय द्वारा पागल ठहरा दिये गये थे;

या जिनका नाम वोटरों की सूची में न था, वोट देने के अधिकार से वंचित रखे गये थे। उम्मेदवारों की योग्यताएँ वही थीं जिनका वर्णन हम केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल के संबंध में कर चुके हैं।

प्रांतीय व्यवस्थापक सभा के अधिकार (Powers of Provincial Legislature)—सन् १९१९ के एक्ट के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं के अधिकार बढ़ाये गये थे। वे समस्त प्रांतीय विषयों के नियम बना सकती थीं। प्रत्येक प्रस्ताव के नियम बनने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक थी। गवर्नर की स्वीकृति प्राप्त प्रस्ताव भी गवर्नर जनरल और सम्राट् के द्वारा रद किये जा सकते थे। गवर्नरों को भी अधिकार था कि वे स्वयं किसी प्रस्ताव को रद कर दें। व्यवस्थापक सभाओं के शासन-निरीक्षण के अधिकारों में विशेष वृद्धि हुई थी। अब वे अविश्वास के प्रस्ताव पास करके मंत्रियों को अपने पद से हटा सकती थीं। उनके आर्थिक अधिकार भी बढ़ाये गये थे। वे ही प्रांतीय बजट पास करती थीं। हस्तांतरित विषयों का व्यय सर्वथा उनके अधीन था परंतु संरक्षित विषयों के व्यय में उनका विशेष हाथ न था।

स्थानीय स्वराज्य (Local Self-Government)—शासन के सुभीते के लिए प्रत्येक प्रांत पूर्ववत् कमिश्नरियों और ज़िलों मे विभक्त था। सन् १९१९ के एक्ट ने इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। किंतु स्थानीय स्वराज्य पर उसका विशेष प्रभाव पड़ा। हस्तांतरित विषय होने के कारण स्थानीय स्वराज्य

मंत्रियों के अधीन हो गया। भारत-सरकार की भी नीति उसको उन्नत बनाने के पक्ष में थी। अतएव सन् १९१९ के पश्चात् स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ सर्वथा ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों के अधीन हो गयीं और उनके कर्तव्य और बंधन बढ़े। उनके शासन में सरकारी हस्तक्षेप बहुत कम हो गया।

नरेंद्र-मंडल (Chamber of Princes)—मांटेग्यू-चेम्स-फोर्ड आवेदन-पत्र में देशी नरेशों के एक नरेंद्र-मंडल के स्थापित करने पर ज़ोर दिया गया था। कालांतर में सन् १९२१ में नरेंद्र-मंडल की स्थापना की गयी। इसमें प्रत्येक बड़ी देशी रियासत का एक प्रतिनिधि होता है और छोटी रियासतों के कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं। इस प्रकार इसके कुल सदस्यों की संख्या १२० के लगभग है। वाइसराय इसके सभापति हैं। नरेंद्र-मंडल का एक चांसलर (Chancellor) और एक प्रो० चांसलर (Pro-Chancellor) होता है। वाइसराय की अनुपस्थिति में, चांसलर सभापति का आसन ग्रहण करता है। नरेंद्र-मंडल केवल परामर्श देनेवाली संस्था है। क़ानून बनाना अथवा शासन की देखभाल करना उसके अधिकार से परे हैं।

उपसंहार—सन् १९१९ के शासन-सुधार द्वारा दिये गये उपर्युक्त अधिकार, भारतीय माँग को देखते हुए बहुत कम थे। किंतु ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में वे ही महत्वपूर्ण और पर्याप्त थे। कार्यरूप में ये सुधार, विशेषकर द्वैध शासन-प्रणाली, दोषों से परिपूर्ण सिद्ध हुए। इधर भारतीय राष्ट्रीय माँगें भी बढ़ती गयीं। इनके

कारण, साइमन कमीशन द्वारा सुधारों के कार्यान्वित रूप की जाँच की गयी और गोलमेज़ परिषदों में शासन-सुधार की दूसरी योजना तैयार की गयी। उसी योजना को, कुछ परिवर्तनों के पश्चात् पार्लमेंट ने भारतीय शासन-सुधार एक्ट सन् १९३५ के रूप में पास किया।

अभ्यास

१—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार भारतीय शासन में भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल का क्या स्थान था ?

२—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार गवर्नर जनरल के भारतीय शासन में कौन कौन अधिकार थे ?

३—सन् १९१९ के भारतीय शासन-विधान के अनुसार केंद्रीय और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव में कौन कौन लोग वोट दे सकते थे ?

४—द्वैध शासन-प्रणाली पर एक निबंध लिखिये ?

५—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल और प्रांतीय व्यवस्थापक सभाओं के शासन-संबंधी क्या अधिकार थे ?

६—निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिये।
हस्तांतरित विषय, संरक्षित विषय, नरेंद्र-मंडल और द्वैध शासन-प्रणाली।

७—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार प्रांतों को किस हद तक स्वशासन का अधिकार दिया गया था ?

तेरहवाँ अध्याय

नया शासन-विधान

(The New Constitution)

नये शासन-विधान की विशेषताएँ—समस्त भारतवर्ष का शासन-विधान, संघ शासन-विधान, प्रांतीय स्वराज्य, संरक्षणों सहित उत्तरदायी शासन, राष्ट्रीयता का अभाव—शासन-विधान के भिन्न भिन्न अंग—भारतीय शासन एक्ट १९३५, भारतीय शासन-संबंधी अन्य एक्ट, ऑर्डर्स-इन-कौंसिल, आदेश-पत्र—शासन-विधान में संशोधन करने की व्यवस्था।

नये शासन-विधान की विशेषताएँ (Characteristic)—सन् १९३५ के शासन-सुधार के एक्ट द्वारा, भारतवर्ष का नया शासन-विधान तैयार किया गया है। नये शासन-विधान की निम्न-लिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

(१) समस्त भारतवर्ष का शासन-विधान—भारतवर्ष का नया शासन-विधान समस्त भारतवर्ष का शासन-विधान है। सन् १९३५ के पहले शासन-सुधार-संबंधी जितने एक्ट बने थे, उनका संबंध केवल ब्रिटिश भारत से था। परंतु नये शासन-विधान का संबंध ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों दोनों से है। उसका उद्देश्य है समस्त भारतवर्ष को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधना।

(२) संघ शासन-विधान—भारतवर्ष का नया शासन-विधान, संघ शासन-विधान .(Federal Constitution) है। अभी

तक भारतवर्ष के जितने शासन-विधान बने थे, वे सब एकात्मक शासन-विधान (Unitary Constitutions) थे। भारतीय सुशासन की ज़िम्मेदारी केंद्रीय सरकार पर थी। नया शासन-विधान संघ शासन-विधान है। उसमें संघ सरकार (Federal Government) और संघांतरित सरकारों (Constituent Governments) में, शासन-संबंधी काम बाँट दिया गया है और प्रत्येक सरकार अपने अपने कामों के लिए उत्तरदायी है। संघ शासन-विधान की अन्य विशेषताएँ—लिखित बेलचक शासन-विधान, और न्यायालय का विशेष स्थान—भी नये शासन-विधान में हैं।

(३) प्रांतीय स्वराज्य—नये शासन-विधान की तीसरी विशेषता प्रांतीय स्वराज्य है। प्रांतीय स्वराज्य की माँग बड़ी पुरानी है। सन् १६१६ के एक्ट के अनुसार प्रांतों को हस्तांतरित विषयों में परिमित स्वशासन अधिकार मिला था। नये शासन-विधान में प्रांतीय स्वराज्य की व्यवस्था की गयी है, पर गवर्नरों के विशेष उत्तरदायित्व (Special Responsibilities) भी निर्धारित किये गये हैं।

(४) संरक्षणों सहित उत्तरदायी शासन—नये शासन-विधान की चौथी विशेषता संरक्षणों सहित उत्तरदायी शासन है। संघ शासन में द्वैध शासन-प्रणाली के अनुसार उत्तरदायी शासन स्थापित होगा। गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व के अतिरिक्त कुछ ऐसे विषय निर्धारित किये गये हैं, जिनका शासन गवर्नर जनरल परामर्शदाताओं (Advisers) की सलाह से करेंगे।

इनको संरक्षित विषय कह सकते हैं। इनके शासन के लिए गवर्नर जनरल को अपने विवेक के अनुसार काम करने का अधिकार दिया गया है।

(५) राष्ट्रीयता का अभाव—नये शासन-विधान की पाँचवीं विशेषता राष्ट्रीयता का अभाव है। शासन-विधान से यह नहीं विदित होता कि समस्त भारतवासी एक राष्ट्र के सदस्य हैं। सांप्रदायिकता और विशेष हितों के प्रतिनिधित्व के कारण, भारतीय निर्वाचक लगभग एक दर्जन पृथक् निर्वाचन संघों में विभक्त कर दिये गये हैं। इससे शासन-विधान के राष्ट्रीय आधार के अभाव का पता चलता है।

शासन-विधान के भिन्न भिन्न अंग—जिन नियमों, उपनियमों और आदेशों के अनुसार आजकल भारतवर्ष का शासन हो रहा है, उसके निम्नलिखित भिन्न भिन्न अंग हैं—

(१) सन् १९३५ का भारतीय शासन एक्ट।

(२) भारतीय शासन-संबंधी अन्य एक्ट। सन् १९३५ के एक्ट के कारण पार्लमेंट द्वारा पास किये गये, भारतीय शासन-संबंधी अनेक एक्ट रद हो गये हैं। फिर भी कुछ ऐसे एक्ट अथवा एक्टों की प्रस्तावनाएँ शेष हैं जो अभी तक रद नहीं हुई हैं, और जिनके अनुसार भारतीय शासन का संचालन हो रहा है; जैसे सन् १९१९ के शासन-सुधार के एक्ट की प्रस्तावना।

(३) ऑर्डर्स-इन-कौंसिल (Orders-in-Council)—शासन-विधान को परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तनशील बनाये रखने के

लिए ऑर्डर्स-इन-कौंसिल की व्यवस्था की गयी है। स-कौंसिल सम्राट् भारतीय शासन-संबंधी बहुतेरी बातों के संबंध में ऑर्डर जारी कर सकते हैं। इन्हें ऑर्डर्स-इन-कौंसिल कहते हैं। ये ऑर्डर्स-इन-कौंसिल भी भारतीय शासन-विधान के आवश्यक अंग हैं।

(४) आदेश-पत्र (Instrument of Instructions)—प्रत्येक गवर्नर जनरल और गवर्नर को नियुक्ति के समय एक आदेश-पत्र दिया जाता है। उसमें इस बात का आदेश दिया जाता है कि गवर्नर जनरल और गवर्नर अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करें। इन आदेशों के कारण कभी कभी शासन-विधान के क़ानूनी अर्थ और उसके वास्तविक रूप में काफ़ी अंतर हो जाता है।

(५) शासन-विधान-संबंधी प्रथाएँ (Conventions of the Constitution)—प्रत्येक शासन-विधान में कुछ ऐसी प्रथाएँ चल पड़ती हैं जिनका शासन-विधान में तो स्थान नहीं होता, लेकिन जिन पर व्यवहार करना उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना स्वयं शासन-विधान पर। भारतवर्ष में भी कुछ ऐसी प्रथाएँ चल पड़ी हैं। परंतु वे अभी इतनी सुदृढ़ नहीं हो पायी हैं जितनी अन्य देशों में। फिर भी उनका क्रमशः विकास होता जाता है। सन् १९१९ के सुधारों के संबंध में संयुक्त पार्लमेंटरी कमेटी ने प्रथाओं द्वारा भारत-मंत्री के निरीक्षण के शिथिल किये जाने की सिफ़ारिश की थी।

भारतीय शासन-विधान के उपर्युक्त पाँच प्रधान अंग हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाये गये नियम और न्यायालयों के निर्णय भी भारतीय शासन-विधान के अंग हैं।

शासन-विधान में संशोधन (Amendment) **करने की व्यवस्था**—भारतीय शासन-विधान में दो प्रकार से संशोधन किया जा सकता है—

(१) पार्लमेंट के एक्ट के द्वारा; और

(२) ऑर्डर्स-इन-कौंसिल द्वारा।

पार्लमेंट जब चाहे भारतीय शासन-विधान में परिवर्तन कर सकती है। भारतवर्ष के लिए नया शासन-विधान बनाना भी उसी के हाथ में है। परिस्थिति के अनुकूल शासन-विधान को परिवर्तन-शील बनाये रखने के लिए, ऑर्डर्स-इन-कौंसिल द्वारा शासन-विधान में संशोधन करने की व्यवस्था की गयी है। ब्रिटिश सरकार जब चाहे, ऑर्डर्स-इन-कौंसिल द्वारा शासन-विधान में छोटे-मोटे परिवर्तन कर सकती है। संघ-शासन स्थापित होने के दस वर्ष बाद संघीय व्यवस्थापक मंडल और प्रांतीय स्वराज्य स्थापित होने के दस वर्ष बाद प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल, प्रस्ताव पास करके, कुछ निर्दिष्ट विषयों में, संशोधन करने के लिए, गवर्नर जनरल और गवर्नर से यह प्रार्थना कर सकते हैं, कि उनके स्वीकृत प्रस्तावों की सूचना सम्राट् के पास भेजी जाय, और वे उसे पार्लमेंट के समक्ष पेश करने की कृपा करें।

अभ्यास

१—नये शासन-विधान की विशेषताओं को समझा कर लिखिये।

२—भारतीय शासन-विधान के भिन्न भिन्न अंगों पर प्रकाश डालिये।

३—नये शासन-विधान के अनुसार भारतीय शासन-विधान में संशोधन करने की क्या व्यवस्था की गयी है ?

चौदहवाँ अध्याय

संघ शासन

(Federal Government)

संघ सरकार की स्थापना—देशी रियासतें और संघ राज्य—कार्य विभाजन—संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों की आय—संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों का व्यय—गवर्नर जनरल और वाइसराय—द्वैध शासन-प्रणाली—गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व—विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के काम—गवर्नर जनरल के अधिकार—शासन-संबंधी अधिकार, व्यवस्थापक मंडल-संबंधी अधिकार, आर्थिक अधिकार, अधिकारों की सीमा—संघीय व्यवस्थापक मंडल—कौंसिल-ऑफ़-स्टेट का संगठन, फेडेरल हाउस-ऑफ़-असेंबली का संगठन—व्यवस्थापक मंडल की सदस्यता के अनधिकारी—व्यवस्थापक मंडल के अधिकार—संघ सरकार का विरोध।

संघ सरकार की स्थापना—नये शासन-विधान के अनुसार भारतीय संघ राज्य के दो अंग निर्धारित किये गये हैं। (१) गवर्नरों और चीफ़ कमिश्नरों के प्रांत और (२) देशी रियासतें। संघ सरकार के स्थापित होने के पूर्व निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—

(१) कम से कम इतने देशी नरेश संघ राज्य में शामिल होने के लिए तैयार हों, जो संघीय व्यवस्थापक मंडल की

बड़ी सभा में ५२ सदस्य भेज सकें, और जिनकी रियासतों की जनसंख्या समस्त देशी रियासतों की जनसंख्या की कम से कम आधी हो।

(२) उक्त शर्त के पूरे होने पर यदि ब्रिटिश पार्लमेंट की दोनों सभाएँ सम्राट् से संघ राज्य स्थापित करने की प्रार्थना करें, तो सम्राट् इस आशय की घोषणा करेंगे कि अमुक दिन से साम्राज्य के अंतर्गत भारतीय संघ राज्य स्थापित किया जाय।

उपर्युक्त दोनों शर्तों से यह विदित होता है कि भारतीय संघ राज्य की स्थापना प्रधानतः देशी नरेशों की इच्छा पर निर्भर है और यदि वे तैयार हो जायँ तो ब्रिटिश पार्लमेंट और सम्राट् की इच्छा पर। ब्रिटिश भारतीय प्रांतों की इच्छा अथवा अनिच्छा का कोई स्थान नहीं। वे संघ राज्य में अवश्य शामिल होंगे, यह बात एक प्रकार से मान सी ली गयी है।

देशी रियासतें और संघ राज्य—देशी रियासतें, संघ राज्य में प्रवेश-प्रार्थना-पत्र (Instrument of Accession) के ज़रिये से शामिल होंगी। इन प्रवेश-प्रार्थना-पत्रों में उनके नरेश अपने और अपने उत्तराधिकारियों की ओर से यह वचन देंगे कि प्रवेश-प्रार्थना-पत्र की शर्तों के अंतर्गत वे सन् १९३५ के एक्ट द्वारा स्थापित संघ राज्य के पदाधिकारियों और संस्थाओं के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे। प्रवेश-प्रार्थना-पत्र भेजते समय देशी नरेश संघ राज्य के स्थापित होने की तिथि का भी उल्लेख कर सकेंगे। यदि उस तिथि तक संघ राज्य स्थापित न हो तो दिये गये प्रवेश-प्रार्थना-

पत्र के आधार पर उनका संघ राज्य में शामिल होना आवश्यक न समझा जायगा। प्रवेश-प्रार्थना-पत्रों का स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना सम्राट् की इच्छा पर निर्भर होगा। साधारणत: सम्राट् उन्हीं प्रवेश-प्रार्थना-पत्रों को स्वीकार करेंगे जिनकी शर्तें संघ राज्य की योजना के अनुकूल होंगी।

कार्य-विभाजन (Distribution of work)—प्रत्येक संघ सरकार की एक विशेषता यह होती है कि उसमें शासन-विधान द्वारा ही, संघ राज्य और संघांतरित राज्यों का कार्यक्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है। भारतवर्ष के नये शासन-विधान में भी इसी प्रकार का कार्य-विभाजन किया गया है। कुछ विषय विशुद्ध संघीय विषय निश्चित कर दिये गये हैं। इस सूची में ५९ विषय हैं। उनमें से मुख्य मुख्य हैं—जल, थल और नभ सेना; परराष्ट्र-संबंध; सार्वजनिक ऋण; डाक, तार, टेलीफोन आदि। इन विषयों में संघांतरित प्रांतों को कोई अधिकार न होगा। कुछ विषय विशुद्ध प्रांतीय विषय निश्चित कर दिये गये हैं। इस सूची में ५४ विषय हैं। उनमें से मुख्य मुख्य हैं—पुलिस, जेल सुधार-गृह, प्रांतीय नौकरियाँ, स्थानीय स्वराज्य, कृषि आदि। साधारणतः इन विषयों में संघ सरकार को कोई अधिकार न होगा। कुछ विषय संयुक्त (Concurrent) विषय निश्चित किये गये हैं। इनमें संघ सरकार और प्रांतीय सरकार दोनों को अधिकार होगा। पर यदि किसी ऐसे विषय के संघीय और प्रांतीय नियमों में विरोध होगा, तो साधारणतः संघीय नियम ठीक समझा जायगा और प्रांतीय नियम

विरोधात्मक अंश तक रद समझा जायगा। इन सूचियों के अतिरिक्त जो विषय रह गये हैं उन्हें शेष (Residuary) विषय कह सकते हैं। उनमें से अमुक विषय संघीय हैं या प्रांतीय, इसका निर्णय गवर्नर जनरल करेंगे और उनका निर्णय सर्वमान्य होगा। कुछ ऐसे विषय भी हैं जिनके विषय में न तो संघीय सरकार को कोई अधिकार है और न प्रांतीय सरकार को। इस कार्य-विभाजन के अतिरिक्त, असाधारण परिस्थितियों के लिए गवर्नर जनरल को कुछ विशेष अधिकार दिये गये हैं। वे आर्डीनेंसें जारी कर सकते हैं और गवर्नर जनरल के एक्ट बना सकते हैं। देशी रियासतों के वे ही विषय संघ सरकार के अधीन होंगे जिनका उल्लेख उनके प्रवेश-प्रार्थना-पत्रों में होगा।

संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों की आय—नये शासन-विधान में कार्य-विभाजन के साथ साथ संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों की आमदनी के ज़रिये निश्चित कर दिये गये हैं। इस व्यवस्था के तीन मूल सिद्धांत हैं—

(१) संघ सरकार की सुदृढ़ आर्थिक अवस्था,

(२) प्रांतीय सरकारों की आर्थिक स्वाधीनता और

(३) व्यय से कम आयवाले प्रांतों की आर्थिक सहायता।

साधारणतः संघीय विषयों से जितनी आमदनी होगी, वह संघ सरकार को मिलेगी और प्रांतीय विषयों से जितनी आमदनी होगी वह प्रांतीय सरकारों को। पर आय-कर, कॉरपोरेशन टैक्स, निर्यात-कर और नमक-कर के संबंध में विशेष व्यवस्था की

गयी है। आय-कर से, संघ सरकार को, १३ करोड़ रुपये मिलने के बाद, जो कुछ शेष बचेगा, वह प्रांतों में विभक्त कर दिया जायगा। यह व्यवस्था कुछ दिनों तक चलेगी और क्रमशः प्रांतीय सरकारों का हिस्सा इस प्रकार बढ़ाया जायगा, कि उनको निर्धारित समय के बाद आय-कर का ५० प्रतिशत् मिलने लगे। संघ सरकार स्थापित होने के दस बरस बाद तक देशी रियासतों में कॉरपोरेशन टैक्स न लगाया जायगा। पर दस बरस के पश्चात् इस विषय का जो नियम बनेगा इसमें वह व्यवस्था की जायगी, कि टैक्स लगाने के स्थान पर, देशी नरेश, संघ सरकार को उतना धन दे सकें, जितना इस टैक्स से उनकी रियासतों में वसूल किया जा सकता है। सारा निर्यात-कर और नमक-कर, यदि संघीय व्यवस्थापक मंडल चाहे, तो प्रांतों में विभाजित किया जा सकता है। लेकिन व्यवस्थापक मंडल द्वारा ऐसे प्रस्ताव के पास किये जाने के पूर्व, जूट के निर्यात-कर को छोड़कर, इन मदों की सारी आमदनी संघ सरकार को मिलेगी। जूट के निर्यात-कर का ६२½ प्रतिशत् प्रांतों में, उसी अनुपात से बाँट दिया जायगा, जिस अनुपात से वहाँ पर जूट पैदा किया जाता हो।

संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों का व्यय—संघ सरकार और प्रांतीय सरकारें, अपनी आमदनी को, अपने अपने विषयों के शासन में खर्च करेंगी। संघीय व्यय की मुख्य मुख्य मदें हैं—जल, थल, नभ सेना, संघीय सार्वजनिक ऋण का ब्याज; डाकखाना, तारघर, टेलीफोन आदि; शासन-संबंधी व्यय; अव-

काश ग्रहीत (Retired) अफ़सरों की पेंशनें; प्रांतों की सहायता और ऋण-निवारण। प्रांतीय व्यय की निम्नलिखित मदें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—पुलिस और जेल; प्रांतीय ऋण का व्याज; प्रांतीय नौकरियों की पेंशनें; शिक्षा; स्थानीय स्वराज्य; कृषि की उन्नति; निर्धन और बेकार मनुष्यों की सहायता; सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा; अस्पताल इत्यादि इत्यादि।

गवर्नर जनरल और वाइसराय—भारतीय शासन में गवर्नर जनरल और वाइसराय के दो अलग अलग पद हैं। साधारणतः इन पदों में विशेष भेदभाव नहीं किया जाता। प्रायः 'गवर्नर जनरल' के स्थान पर 'वाइसराय' और 'वाइसराय' के स्थान पर 'गवर्नर जनरल' शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है। संघ सरकार स्थापित होने पर भी यह भेदभाव इसी प्रकार बना रहेगा। पर प्रचलित प्रथा के अनुसार सम्राट् को इन दोनों पदों के लिए एक ही व्यक्ति के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। गवर्नर जनरल की हैसियत से, वह व्यक्ति सम्राट् की ओर से संघ राज्य का सर्वोच्च शासक होगा। उसे २,५०,००० रुपये सालाना वेतन मिलेगा और मर्यादापूर्वक रहने के लिए यथोचित भत्ता भी। वाइसराय की हैसियत से वह उन देशी रियासतों की देखभाल करेगा जो संघ-राज्य में शामिल न होंगी और उन सब अधिकारों पर अमल करेगा, जो सम्राट् उसको प्रदान करें। गवर्नर जनरल की हैसियत से वह सम्राट् की ओर से काम करेगा, और वाइसराय की हैसियत में सम्राट् के स्थान पर। 'वाइसराय' के संबंध में एक बात

हमेशा स्मरण रखनी चाहिये। शासन-विधान में कहीं पर 'वाइसराय' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। 'सम्राट् के प्रतिनिधि' इसी वाक्य का प्रयोग किया गया है। परंतु प्रचलित प्रथा के कारण 'सम्राट् के प्रतिनिधि' के स्थान पर 'वाइसराय' शब्द का प्रयोग किया जाना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

सम्राट्, गवर्नर जनरल को प्रधान-मंत्री के परामर्श से नियुक्त करते हैं। गवर्नर जनरल का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं है पर पाँच बरस की प्रथा चल पड़ी है। नियुक्ति के समय गवर्नर जनरल को एक आदेश-पत्र (Instrument of Instructions) मिलता है। इसमें यह लिखा होता है कि गवर्नर जनरल अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करें। साधारणतः गवर्नर जनरल, इस आदेश-पत्र के अनुसार काम करते हैं, पर उनके लिए ऐसा करना अनिवार्य नहीं है। शासन-विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि गवर्नर जनरल आदेश-पत्र के प्रतिकूल कोई काम करेंगे तो वह आदेश-पत्र के आधार पर ग़लत न ठहराया जा सकेगा।

द्वैध शासन-प्रणाली—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली द्वारा उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया था। भारतीय जनता इतने से ही संतुष्ट न थी। भारतीय राष्ट्रवादी भारत-सरकार को पूर्ण रूप से उत्तरदायी सरकार बनाना चाहते थे। नये शासन-विधान में उनकी पूरी माँग तो स्वीकार नहीं की गयी है, पर द्वैध शासन-प्रणाली द्वारा संघ सरकार को उत्तरदायी सरकार बनाने की व्यवस्था की गयी है। देश-रक्षा

अर्थात् सेना, ईसाई धर्म, पर-राष्ट्र-संबंध (भारतीय संघ राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य राज्यों के परस्पर संबंध को छोड़कर) असभ्य जातियों की देखभाल आदि संरक्षित विषय निश्चित किये गये हैं। इन विषयों का शासन गवर्नर जनरल अपने विवेक के अनुसार (in his discretion) करेंगे, पर भारत-मंत्री के निरीक्षण में और उनके आदेशानुकूल। इन विषयों के शासन के लिए, उन्हें अधिक से अधिक तीन परामर्शदाताओं (Advisers) के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। इनकी नौकरी की शर्तें और वेतन आदि स-कौंसिल सम्राट् निश्चित करेंगे। संघ राज्य की आर्थिक स्थिरता सुरक्षित रखने के लिए गवर्नर जनरल को एक आर्थिक परामर्शदाता (Financial Adviser) के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। उसकी नौकरी की शर्तें, वेतन आदि स्वयं गवर्नर जनरल निश्चित करेंगे। संरक्षित विषयों के अतिरिक्त गवर्नर जनरल के कुछ विशेष उत्तरदायित्व (Special Responsibilities) भी निश्चित किये गये हैं। उनकी भी देखभाल गवर्नर जनरल भारत-मंत्री के निरीक्षण में और उनके आदेशानुकूल व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार करेंगे। इन विषयों के सुशासन की जिम्मेदारी स्वयं गवर्नर जनरल की होगी और वे अपनी नीति तथा कामों के लिए भारत-मंत्री के प्रति उत्तरदायी होंगे।

संरक्षित विषय और विशेष उत्तरदायित्व को छोड़कर संघ सरकार के अन्य विषयों का शासन, गवर्नर जनरल मंत्रि-मंडल की सहायता और परामर्श से करेंगे। मंत्रि-मंडल में अधिक से

अधिक दस सदस्य होंगे। उनको स्वयं गवर्नर जनरल साधारणतः व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों में से नियुक्त करेंगे। गवर्नर जनरल किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त कर सकेंगे, जो व्यवस्थापक मंडल का सदस्य न हो, पर इस शर्त पर कि नियुक्ति के पश्चात् छः महीने के अंदर वह व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा का सदस्य बन जाय। अन्यथा उसको अपना पद त्यागना पड़ेगा। मंत्रियों का भत्ता, वेतन आदि व्यवस्थापक मंडल द्वारा निश्चित किया जायगा। यह उनके कार्यकाल में बदला न जा सकेगा। मंत्रि-मंडल अपनी नीति और कार्यों के लिए व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होगा। इस प्रकार संघ-राज्य में द्वैध शासन-प्रणाली द्वारा उत्तरदायी शासन स्थापित किया जायगा।

गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व (Special Responsibilities)—नये शासन-विधान में गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व का भी उल्लेख किया गया है। ये संरक्षित और हस्तांतरित दोनों प्रकार के विषयों में हैं। उनमें से निम्नलिखित विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं—

(१) भारतवर्ष या उसके किसी भाग की शांति भंग करने-वाले खतरों का निवारण।

(२) संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता का सुरक्षित रखना।

(३) अल्प-संख्यक जन-समुदायों (Minorities) के उचित हितों की रक्षा करना।

(४) सार्वजनिक नौकरियों के सदस्यों और उनके आश्रितों के उचित अधिकारों की रक्षा करना और

(५) देशी रियासतों के अधिकारों और नरेशों के अधिकारों तथा मर्यादा की रक्षा करना।

इन विषयों का शासन गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार भारत-मंत्री के निरीक्षण में उनके आदेशानुकूल करेंगे।

विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय (Discretion and Individual Judgment) **के काम**—नये शासन-विधान में कई स्थानों में विवेक (Discretion) और व्यक्तिगत् निर्णय (Individual Judgment) के कामों का उल्लेख किया गया है। गवर्नर जनरल के अधिकारों को समझने के लिए उनका अंतर समझ लेना आवश्यक है। विवेक के अनुसार किये जानेवाले कामों में मंत्रियों का परामर्श लेना आवश्यक नहीं। परंतु व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार किये जानेवाले कामों में मंत्रियों का परामर्श लेना आवश्यक होगा, लेकिन अंतिम निर्णय गवर्नर जनरल का ही होगा। इन दोनों प्रकार के कामों को गवर्नर जनरल भारत-मंत्री के निरीक्षण में उनके आदेशानुकूल करेंगे।

गवर्नर जनरल के अधिकार (Powers of Governor General)—नये शासन-विधान में उत्तरदायी सरकार की व्यवस्था होते हुए भी गवर्नर जनरल को अनेक अधिकार दिये गये हैं। हम उनको निम्नलिखित चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(अ) शासन-संबंधी अधिकार—गवर्नर जनरल को अपने

विवेक के अनुसार मंत्रियों, परामर्शदाताओं और प्रथम आर्थिक परामर्शदाता के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है और व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार भारतीय एडवोकेट जनरल के नियुक्त करने का अधिकार। इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल अपने विवेक के अनुसार, रिज़र्व बैंक के गवर्नर, डिप्टी गवर्नर और चार संचालकों (Directors) को नियुक्त करते हैं। संघ सरकार के सारे काम गवर्नर जनरल के नाम पर किये जायँगे। अतएव 'स-कौंसिल गवर्नर जनरल' इस वाक्य का प्रयोग बंद हो जायगा। विधान-युक्त-शासन के असफल होने पर गवर्नर जनरल संघ सरकार के सारे या आवश्यकतानुकूल विषय अपने अधीन कर सकेंगे। संघ सरकार के सर्वोच्च पदाधिकारी होने के कारण, भारतीय जल, थल और नभ सेनाएँ गवर्नर जनरल के अधीन होंगी पर सम्राट् को एक प्रधान सेनापति (Commander-in-Chief) के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। प्रधान सेनापति के सेना संबंधी वे ही अधिकार होंगे जो सम्राट् उनको प्रदान करें।

(ब) व्यवस्थापक मंडल संबंधी अधिकार—संघीय व्यवस्थापक मंडल का साल में एक अधिवेशन अवश्य होगा, पर गवर्नर जनरल को अपने विवेक के अनुसार व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं अथवा एक सभा के बुलाने, विसर्जित करने और संघीय असेंबली के भंग करने का अधिकार दिया गया है। वे अपने विवेक के अनुसार दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में या किसी सभा के अधिवेशन में अपना भाषण दे सकेंगे अथवा अपना संदेश

भेज सकेंगे। गवर्नर जनरल या उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सामने व्यवस्थापक मंडल के सब सदस्यों को राजभक्ति की शपथ खानी पड़ेगी। व्यवस्थापक मंडल द्वारा पास किये गये प्रस्ताव गवर्नर जनरल की अनुमति बिना क़ानून न बन सकेंगे। गवर्नर जनरल को अपने विवेक के अनुसार किसी प्रस्ताव के संबंध में अनुमति देने, न देने या उसे सम्राट् की आज्ञा के लिए रिज़र्व करने का अधिकार दिया गया है। असाधारण परिस्थितियों में गवर्नर जनरल को आॅर्डीनेंसें जारी करने का अधिकार दिया गया है और अपने विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों को संतोषपूर्वक करने के लिए गवर्नर जनरल के एक्ट बनाने का अधिकार।

(स) आर्थिक अधिकार—संघ सरकार की सारी माँगें गवर्नर जनरल की सिफ़ारिश पर संघीय असेंबली में पेश की जायँगी। वे दो हिस्सों में विभक्त होंगी—(१) संघ सरकार का वह व्यय जिसका उल्लेख शासन-विधान में किया गया है, और (२) वह व्यय जिसकी माँग प्रथम माँग के अतिरिक्त पेश की जाती है। अमुक माँग प्रथम भाग की है अथवा द्वितीय, इसका निर्णय गवर्नर जनरल अपने विवेक के अनुसार करेंगे। व्यय के प्रथम भाग पर संघीय व्यवस्थापक मंडल को वोट देने का अधिकार न होगा, पर द्वितीय भाग व्यवस्थापक मंडल के वोट पर निर्भर होगा। असेंबली द्वारा अस्वीकृत माँग बिना गवर्नर जनरल की आज्ञा, कौंसिल-आॅफ़-स्टेट में न पेश की जायगी। यदि असेंबली किसी माँग को घटायेगी तो घटी हुई माँग ही कौंसिल-आॅफ़-स्टेट में पेश

की जायगी, जब तक गवर्नर जनरल उसके विरुद्ध आज्ञा न दें। संघ सरकार की आर्थिक स्थिरता क़ायम रखना गवर्नर जनरल का एक विशेष उत्तरदायित्व है। गवर्नर जनरल के रिज़र्व बैंक-संबंधी अधिकारों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

(द) वाइसराय के अधिकार—सम्राट् के प्रतिनिधि अर्थात् वाइसराय की हैसियत में भी, नये शासन-विधान के अनुसार, गवर्नर जनरल को कुछ अधिकार दिये गये हैं। इस हैसियत से वे उन देशी रियासतों में, जो संघ राज्य में शामिल न होंगी, सम्राट् के अधिकारों की रक्षा और उनके कर्तव्यों का पालन करेंगे। इसी नाते वे संघांतरित रियासतों के उन विषयों के शासन की देख-भाल करेंगे जो संघ सरकार को समर्पित न किये जायँगे। वाइस-राय की हैसियत से वे उन सब अधिकारों का भी प्रयोग करेंगे जो सम्राट् समय समय पर उनको प्रदान करें।

(य) अधिकारों की सीमा—उपर्युक्त विवरण से हमें यह न समझना चाहिये कि नये शासन-विधान के अनुसार गवर्नर जनरल संघ राज्य के निरंकुश शासक होंगे। कुछ विषयों का शासन वे मंत्रियों के परामर्श और सहायता से करेंगे। इस अंश तक संघ राज्य में उत्तरदायी शासन स्थापित होगा। किंतु संरक्षित विषयों का शासन वे स्वयं अपने विवेक के अनुसार करेंगे, और इनके लिए वे बज़रिये भारत-मंत्री ब्रिटिश पार्लमेंट के प्रति उत्तरदायी होंगे। उन सब विषयों के शासन में, जिनमें उन्हें अपने विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार काम करने का अधिकार

दिया गया है, वे भारत-मंत्री के अधीन होंगे और उनके आदेशानुकूल काम करेंगे।

संघीय व्यवस्थापक मंडल (Federal Legislature)—नये शासन-विधान के अनुसार जो व्यवस्थापक मंडल बनेगा उसका आकार १९१९ के केंद्रीय व्यवस्थापक मंडल के आकार की अपेक्षा बड़ा होगा। उसकी कौंसिल-ऑफ़-स्टेट और फेडरल हाउस-ऑफ़-असेंबली दो सभाएँ होंगी। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के २६० सदस्य होंगे और असेंबली के ३७५। कोई मनुष्य दोनों सभाओं का सदस्य न हो सकेगा।

कौंसिल-ऑफ़-स्टेट का संगठन (Composition of Council of State)—कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के २६० सदस्यों में से १५६ ब्रिटिश भारत के होंगे और १०४ देशी रियासतों के। ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि भिन्न भिन्न प्रांतों और रियासतों या उनके समूहों में विभक्त कर दिये गये हैं। संयुक्त प्रांत को बीस प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के सदस्यों का कार्यकाल नौ बरस निश्चित किया गया है। परंतु पहले चुनाव को छोड़कर प्रत्येक तीसरे वर्ष एक तिहाई सदस्यों का चुनाव होगा। पहले चुनाव में एक तिहाई सदस्य तीन बरस के लिए चुने जायँगे, एक तिहाई छः बरस के लिए और शेष नौ बरस के लिए। इसके पश्चात् उपर्युक्त कार्यकाल समाप्त होने पर जो स्थान खाली होंगे, उनका चुनाव नौ वर्ष के लिए होगा। इस प्रकार कौंसिल-ऑफ़-स्टेट एक स्थायी संस्था होगी और उसमें नये सदस्यों का आगमन भी होता

रहेगा। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों को उनके नरेश मनोनीत करेंगे। कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के सभापति और उप-सभापति उसके सदस्यों में से उन्हीं के द्वारा चुने जायँगे। प्रत्येक सदस्य को राज-भक्ति की शपथ खानी पड़ेगी। $\frac{1}{6}$ सदस्यों का कोरम होगा और साल में कम से कम एक अधिवेशन अवश्य होगा। सदस्यता छोड़ने के तीन तरीक़े निर्धारित किये गये हैं—

(१) गवर्नर जनरल के नाम त्याग-पत्र भेज कर।

(२) उन अयोग्यताओं के कारण जिनका उल्लेख एक्ट में किया गया है।

(३) यदि कोई सदस्य कौंसिल-ऑफ़-स्टेट की आज्ञा के बिना लगातार ६० दिन तक अनुपस्थित रहेगा तो सभा उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकेगी।

फेडेरल हाउस ऑफ़ असेंबली का संगठन (Composition of Federal House of Assembly)—असेंबली के ३७५ सदस्यों में से २५० ब्रिटिश भारत के होंगे और १२५ देशी रियासतों के। ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधि, भिन्न भिन्न प्रांतों और रियासतों या उनके समूहों में विभक्त कर दिये गये हैं। संयुक्त प्रांत के ३७ प्रतिनिधि होंगे। प्रत्येक प्रांत में सांप्रदायिक आधार पर विविध संप्रदायों के प्रतिनिधिओं की संख्या निश्चित की गयी है। संयुक्त प्रांत में १९ साधारण (General) जगहें होंगी, जिनमें से ३ दलित जातियों के लिए संरक्षित कर दी गयी हैं। शेष में से १२ मुसल्मानों की, १ एँगलो इंडियस की,

१ युरोपियनों की, १ भारतीय ईसाइयों की, १ ज़मींदारों की, १ मज़-दूरों की और १ महिलाओं की जगहें होंगी। असेंबली के ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधियों का चुनाव परोक्ष निर्वाचन-प्रणाली (Indirect Election) से किया जायगा। उसके अधिकांश सदस्य प्रांतीय व्यवस्थापक मंडलों अथवा सभाओं द्वारा चुने जायँगे। देशी रियासतों के प्रतिनिधि उनके नरेशों द्वारा मनोनीत होंगे।

असेंबली का कार्य-काल पाँच बरस निर्धारित किया गया है। इस अवधि के पूर्व भी वह भंग की जा सकेगी, परंतु उसका कार्य-काल बढ़ाया न जा सकेगा। उसके रिक्त स्थान केवल शेष काल के लिए ही भरे जायँगे। उसके प्रमुख (Speaker) और उप-प्रमुख (Deputy Speaker) उसी के सदस्य होंगे और उसी के सदस्यों द्वारा चुने जायँगे। प्रत्येक सदस्य को राजभक्ति की शपथ खानी पड़ेगी। एक तिहाई सदस्यों का कोरम होगा और साल में कम से कम एक अधिवेशन अवश्य होगा। त्याग-पत्र अथवा अनुपस्थिति संबंधी नियम वही हैं जो कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के।

व्यवस्थापक मंडल की सदस्यता के अनधिकारी— कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के उम्मेदवारों की आयु कम से कम ३० बरस होनी चाहिये और असेंबली के उम्मेदवारों की २५ बरस। संघीय कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के उम्मेदवारों में उन सब योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उस प्रांत की कौंसिल-ऑफ़-स्टेट के निर्वाचकों के लिए आवश्यक हो। संघीय असेंबली के उम्मेदवार वे ही व्यक्ति हो सकेंगे, जो प्रांतीय असेंबली के उम्मेदवार हो सकते हों।

निम्नलिखित व्यक्ति उम्मेदवार होने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हैं—

(क) वैतनिक सरकारी कर्मचारी।

(ख) उपयुक्त न्यायालय द्वारा पागल ठहराये गये लोग।

(ग) वे दिवालिये जिन्होंने अपना भुगतान न किया हो।

(घ) निर्वाचन-संबंधी अपराधी निर्धारित काल तक उम्मेदवार न हो सकेंगे।

(ङ) किसी फ़ौजदारी अपराध के कारण दो वर्ष या अधिक की सज़ा प्राप्त या कालेपानी की सज़ा पानेवाले व्यक्ति सज़ा समाप्त होने के पाँच वर्ष बाद तक उम्मेदवार न हो सकेंगे। गवर्नर जनरल अपने विवेक के अनुसार इस अवधि को घटा सकते हैं।

(च) वे मनुष्य जो निर्वाचन-संबंधी व्यय का ब्योरा न भेजेंगे, निर्धारित अवधि समाप्त होने के पाँच वर्ष बाद तक उम्मेदवार न हो सकेंगे और

(छ) वे मनुष्य जो कालेपानी अथवा किसी फ़ौजदारी अपराध की सज़ा भोग रहे हों किसी व्यवस्थापक सभा के सदस्य न चुने जा सकेंगे।

व्यवस्थापक मंडल के अधिकार (Powers of Federal Legislature)—संघीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकार नीचे लिखे तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं—

(अ) शासन-निरीक्षण का अधिकार—गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व और उनके विवेक तथा व्यक्तिगत् निर्णय के

कामों को छोड़कर हस्तांतरित विषयों के शासन में संघीय मंत्रि-मंडल संघीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होगा। व्यवस्थापक मंडल का कोई सदस्य, मंत्रि-मंडल से उसकी नीति और कामों के विषय में पश्न पूछ सकेगा और अधिवेशन के स्थगित करने या अविश्वास का प्रस्ताव पेश कर सकेगा। मंत्रियों को व्यवस्थापक मंडल द्वारा नियत किया हुआ वेतन और भत्ता मिलेगा; लेकिन किसी मंत्रि-मंडल के शासन-काल में उसका वेतन घटाया न जा सकेगा।

(ब) नियम-निर्माण का अधिकार—संघीय व्यवस्थापक मंडल को सभी संघीय विषयों के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। संयुक्त विषयों के संघीय और प्रांतीय नियमों में यदि विरोध होगा तो साधारणतः संघीय नियम ठीक और प्रांतीय नियम विरोधात्मक अंश तक रद् समझा जायगा। शेष विषयों में से, जिनको गवर्नर जनरल संघीय विषय निश्चित करेंगे, उनके संबंध में भी संघीय व्यवस्थापक मंडल नियम बना सकेगा।

(स) आर्थिक अधिकार—प्रति वर्ष संघीय व्यवस्थापक मंडल के सम्मुख आय-व्यय का ब्योरा पेश किया जायगा। व्यय-संबंधी मदें, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, दो भागों में विभक्त होंगी। जिन मदों के व्यय पर, संघीय असेंबली को वोट देने का अधिकार न होगा वे समस्त आय की लगभग ८० प्रतिशत् की होंगी। शेष २० प्रतिशत् आय व्यवस्थापक मंडल के वोट के अनुसार ख़र्च की जायगी। आर्थिक विषयों में असेंबली के अधिकार कौंसिल-

ऑफ़-स्टेट के अधिकारों की अपेक्षा कुछ अधिक होंगे। जब तक गवर्नर जनरल हस्तक्षेप न करें, असेंबली द्वारा अस्वीकृत माँग कौंसिल-ऑफ़-स्टेट में पेश न की जायगी और असेंबली द्वारा घटायी हुई माँग बढ़ाकर पेश न की जायगी।

(द) व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सीमा—संघीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकार असीम नहीं हैं। संरक्षित विषयों के शासन पर उसका कोई अधिकार नहीं। व्यय का लगभग ८० प्रतिशत भाग अभी तक उसके अधिकार से परे है। उसका नियम-निर्माण अधिकार भी सीमारहित नहीं है। उसके द्वारा पास किये गये प्रस्ताव गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना नियम नहीं बन सकते। गवर्नर जनरल को अधिकार है कि अनुमति दें या न दें या प्रस्ताव को पुनर्विचार के लिए वापस कर दें या सम्राट् की आज्ञा के लिए रिज़र्व कर दें। बहुत से विषयों के प्रस्ताव गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना व्यवस्थापक मंडल में पेश नहीं किये जा सकते। इनके अतिरिक्त गवर्नर जनरल को ऑर्डीनेंसों और गवर्नर जनरल के एक्टों के जारी करने का अधिकार भी दिया गया है।

संघ सरकार का विरोध—जिस रूप में नये शासन-विधान के अनुसार संघ सरकार स्थापित करने की व्यवस्था की गयी है उससे भारतवर्ष के राष्ट्रवादी संतुष्ट नहीं हैं। देशी रियासतें भी संघ राज्य में शामिल होने के पूर्व अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने में लगी हैं। भारतीय कांग्रेस संघ सरकार का जन्म के पहले ही संहार करना चाहती है। इस विरोध के तीन मुख्य कारण हैं—

(अ) संघीय व्यवस्थापक मंडल के प्रतिक्रियात्मक (Reactionary) होने की आशंका है।

(ब) गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व, विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों के कारण उत्तरदायी शासन का रंग बहुत कुछ फीका पड़ गया है, और

(स) द्वैध शासन-प्रणाली के अनुभव के कारण यह आशा निर्मूल है कि वह संघ सरकार सफल हो पायेगी।

अतएव भारतवर्ष के प्रायः सभी राजनीतिक दल संघ सरकार की स्थापना का विरोध कर रहे हैं। युरोपीय महासमर के कारण सरकार ने भी महासमर काल तक के लिए संघ सरकार की योजना को स्थगित कर दिया है। अब यह बतलाना कठिन है कि प्रस्तावित संघ सरकार स्थापित होगी, या नहीं; और यदि स्थापित होगी, तो उसका वास्तविक रूप क्या होगा।

अभ्यास

१—किन किन शर्तों के पूरे होने के बाद भारतीय संघ राज्य स्थापित होगा ?

२—गवर्नर जनरल और वाइसराय में क्या अंतर है ? नये शासन-विधान के अनुसार भारतीय शासन में गवर्नर जनरल के कौन कौन अधिकार होंगे ?

३—गवर्नर जनरल के विशेष उत्तरदायित्व का क्या अर्थ है ? विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों का भेद समझाइये।

४—"नये शासन-विधान के अनुसार भारतवर्ष में संरक्षणों सहित उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया है।" इस वाक्य को स्पष्ट कीजिये।

५—संघीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के नाम लिखिये और बड़ी सभा के संगठन का विवरण लिखिये।

६—कौन कौन व्यक्ति संघीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्य नहीं हो सकते ? असेंबली के संगठन का विवरण लिखिये।

७—संघीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों का विवरण लिखिये।

८—"भारतवासी संघ सरकार स्थापित करने का विरोध कर रहे हैं"। क्यों ?

पंद्रहवाँ अध्याय

प्रांतीय शासन

(Provincial Government)

ब्रिटिश भारतीय प्रांत—प्रांतीय गवर्नर और चीफ़ कमिश्नर—गवर्नरों के आदेश-पत्र—प्रांतीय मंत्रि-मंडल—गवर्नरों के विशेष उत्तरदायित्व—गवर्नरों के अधिकार, अधिकारों की सीमा—प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल—व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की योग्यताएँ—प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल—लेजिस्लेटिव कौंसिल के निर्वाचक—प्रांतीय लेजिस्लेटिव असें-बली—असेंबली के निर्वाचक—सदस्यता के अनधिकारी—व्यवस्थापक मंडल के अधिकार, व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सीमा—नियम-निर्माण की प्रणाली—प्रांतीय स्वराज्य।

ब्रिटिश भारतीय प्रांत (British Indian Provinces)—नये शासन-विधान की दूसरी विशेषता प्रांतीय स्वराज्य है। इसकी माँग बड़ी पुरानी है। सन १९१९ के शासन-विधान के अनुसार हस्तांतरित विषयों के शासन में प्रांतीय स्वराज्य की स्थापना की गयी थी। नये शासन-विधान में हस्तांतरित और संरक्षित विषयों का भेद मिटा दिया गया है और प्रांतीय स्वराज्य स्थापित करने की व्यवस्था की गयी है। १ अप्रैल सन् १९३७ से प्रांतीय शासन नये शासन-विधान के अनुसार हो रहा है।

भारतीय प्रांत ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि के साथ साथ शासन के सुभीते की दृष्टि से बनाये गये हैं। समय समय पर उनकी सीमा

में परिवर्तन अवश्य किये गये हैं परंतु आज भी उनके निर्माण का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। कुछ प्रांतों का क्षेत्रफल ज्यादा है और कुछ का कम। संयुक्त प्रांत का क्षेत्रफल १,०६,२४८ वर्ग मील है और सीमांत पश्चिमोत्तर प्रदेश का केवल १३,५१८ वर्ग मील। प्रांतों की जनसंख्या और भाषाओं में भी विभिन्नता है। नये शासन-विधान में बर्मा का प्रांत ब्रिटिश भारत से अलग कर दिया गया है और सिंध तथा उड़ीसा के दो नये प्रांत बनाये गये हैं। इन दोनों प्रांतों का व्यय, आय से अधिक होगा और अपनी आर्थिक स्थिरता के लिए ये संघ सरकार पर निर्भर होंगे।

नये शासन-विधान में केवल दो प्रकार के प्रांतों की व्यवस्था की गयी है—(१) गवर्नरों के प्रांत और (२) चीफ़ कमिश्नरों के प्रांत। सीमांत पश्चिमोत्तर प्रदेश, पंजाब, संयुक्त प्रांत, बिहार, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मद्रास, बंबई और सिंध गवर्नरों के प्रांत हैं और ब्रिटिश बिलोचिस्तान, अजमेर-मारवाड़ा, दिल्ली, कुर्ग, अंडमान-निकोबार और पंथ पिपलौदा चीफ़ कमिश्नरों के। स-कौंसिल सम्राट् को अपने आॅर्डर द्वारा नये प्रांतों के बनाने और पुराने प्रांतों के क्षेत्र के घटाने या बढ़ाने का अधिकार दिया गया है। नये शासन-विधान के अनुसार ब्रिटिश भारत का कोई प्रांत लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीन नहीं है।

प्रांतीय गवर्नर और चीफ़ कमिश्नर—सन् १९३५ के शासन-विधान में, चीफ़ कमिश्नरों के प्रांतों को छोड़कर प्रांतीय शासन के सर्वोच्च पदाधिकारी को 'गवर्नर' कहते हैं। उसकी नियुक्ति

सम्राट् द्वारा पाँच बरस के लिए की जाती है। सब प्रांतों के गवर्नरों को समान वेतन और भत्ता नहीं मिलता। संयुक्त-प्रांत, बंबई, बंगाल और मद्रास के गवर्नरों को १,२०,००० रुपये सालाना वेतन मिलता है; पंजाब और बिहार के गवर्नरों को १,००,००० रुपये; मध्य-प्रांत तथा बरार के गवर्नर को ७२,००० रुपये और आसाम, सीमांत पश्चिमोत्तर प्रदेश, उड़ीसा और सिंध के गवर्नरों को ६६,००० रुपये। छुट्टी के भत्ते में भी इसी प्रकार की विभिन्नता है। संयुक्त-प्रांत के गवर्नर को छुट्टी में ४,००० रुपये, मध्य-प्रदेश के गवर्नर को ३,००० रुपये और सिंध तथा उड़ीसा के गवर्नरों को २,७५० रुपये मासिक भत्ता मिलता है। प्रचलित प्रथा के अनुसार सम्राट् बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नरों को भारत-मंत्री की सिफ़ारिश पर नियुक्त करते हैं और अन्य प्रांतों के, गवर्नर जनरल की सिफ़ारिश पर। बंबई, मद्रास और बंगाल के गवर्नर भारत-मंत्री से सीधे पत्र-व्यवहार कर सकते हैं; और भारत-सरकार के किसी ऑर्डर के प्रतिकूल उनसे अपील कर सकते हैं। अन्य गवर्नरों को यह अधिकार नहीं होता।

चीफ़ कमिश्नरों के प्रांत गवर्नर जनरल के अधीन होते हैं। वे इन प्रांतों का शासन चीफ़ कमिश्नरों की सहायता से करते हैं और उनको अपने इच्छानुकूल अधिकार दे सकते हैं। अपने विवेक के अनुसार वे चीफ़ कमिश्नरों को नियुक्त भी करते हैं।

गवर्नरों के आदेश-पत्र (Instrument of Instructions)—गवर्नर जनरल की भाँति प्रांतीय गवर्नरों को भी नियुक्ति

के समय एक आदेश-पत्र दिया जाता है। इसमें उन्हें यह आदेश मिलता है कि वे अपने अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार करें। गवर्नरों के लिए यह अनिवार्य नहीं कि वे आदेश-पत्रों के अनुसार ही काम करें। शासन-विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि गवर्नर आदेश-पत्र के प्रतिकूल कोई काम करेंगे तो वह उसके आधार पर ग़लत न ठहराया जा सकेगा।

प्रांतीय मंत्रि-मंडल (Ministry)—प्रांतीय गवर्नर को सहायता और परामर्श देने के लिए प्रत्येक प्रांत में एक मंत्रि-मंडल होता है। उसके सदस्यों की संख्या हर प्रांत में अलग अलग होती है। गवर्नर साधारणतः व्यवस्थापक सभा के बहुसंख्यक दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करते हैं, और प्रधान मंत्री की सिफ़ारिश पर अन्य मंत्रियों को। प्रायः सभी मंत्री व्यवस्थापक मंडल के सदस्य होते हैं। परंतु गवर्नर ऐसे व्यक्तियों को भी मंत्री नियुक्त कर सकते हैं, जो व्यवस्थापक मंडल के सदस्य नहीं हैं। ऐसे व्यक्ति, यदि व्यवस्थापक मंडल के सदस्य न हो जायँ, तो छः महीने से अधिक मंत्री नहीं रह सकते। मंत्रि-मंडल का कार्यकाल गवर्नर की इच्छा पर निर्भर होता है। मंत्रियों को प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के द्वारा निर्धारित वेतन मिलता है। किसी मंत्रि-मंडल के कार्यकाल में उसका वेतन घटाया नहीं जा सकता। मंत्रि-मंडल अपनी नीति और कामों के लिए व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है।

गवर्नरों के विशेष उत्तरदायित्व (Special Responsibilities)—नये शासन-विधान के अनुसार प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली का अंत तो कर दिया गया है, परंतु अभी तक उनको पूर्ण उत्तरदायी शासन नहीं मिला है। गवर्नर जनरल की भाँति गवर्नरों के भी कई विशेष उत्तरदायित्व निर्धारित किये गये हैं। उनकी पूर्ति के लिए उन्हें व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार काम करने का अधिकार दिया गया है। निम्नलिखित विशेष उत्तरदायित्व ध्यान देने योग्य हैं—

(अ) प्रांत अथवा उसके किसी भाग की शांति को भंग करने-वाले ख़तरों का निवारण।

(ब) अल्पसंख्यक जन-समुदायों के उचित हितों की रक्षा।

(स) सार्वजनिक नौकरियों के सदस्यों और उनके आश्रितों के उचित हितों की रक्षा।

(द) प्रांत के पृथक् प्रदेशों (Excluded Areas) की शांति और शासन की व्यवस्था।

(य) देशी रियासतों के अधिकारों और उनके नरेशों के अधिकारों तथा मर्यादा की रक्षा।

(र) गवर्नर जनरल के उन आदेशों पर अमल करना, जिन्हें वे अपने विवेक या व्यक्तिगत् निर्णय के कामों के लिए जारी करें।

इन विषयों के शासन में गवर्नरों को व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार काम करने का अधिकार है। इनके अतिरिक्त वे बहुत से अन्य काम भी विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार कर सकते हैं। इन विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों को प्रांतीय गवर्नर, गव-

र्नर जनरल के निरीक्षण में उनके आदेशानुसार करते हैं। विशेष उत्तरदायित्व, विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों के कारण, कुछ लोगों का कहना है कि प्रांतीय शासन में द्वैध शासन-प्रणाली का अस्तित्व अब तक शेष है। केवल उसका नाम बदल दिया गया है। परंतु यह संभव है कि राजनीतिक दबाव के कारण, कार्यरूप में गवर्नर उपर्युक्त विशेष अधिकारों पर ज्यादा अमल न कर सकें।

गवर्नरों के अधिकार (Powers of Governors)—नये शासन-विधान में प्रांतीय स्वराज्य की व्यवस्था होते हुए भी गवर्नरों को अनेक अधिकार दिये गये हैं। हम उनको निम्नलिखित चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(अ) शासन-संबंधी अधिकार—प्रांतीय गवर्नर अपने विवेक के अनुसार मंत्रियों को नियुक्त करते हैं और व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार प्रांतीय एडवोकेट जनरल को। यद्यपि शांति और व्यवस्था का विषय मंत्रियों के अधीन है तो भी गवर्नर को यह अधिकार है कि वे नियमानुकूल स्थापित सरकार की राजनीतिक षड्यंत्रों से और प्रांत की शांति तथा सुव्यवस्था की हिंसात्मक आचारणों से रक्षा करें। प्रांतीय शासन के सारे काम गवर्नरों के नाम पर किये जाते हैं। वे ही मंत्रियों का काम निर्धारित करते हैं। विधान-युक्त शासन के असफल होने पर घोषणा द्वारा वे उन विषयों का शासन अपने विवेक के अनुसार कर सकते हैं जिनकी घोषणा की जाय।

(ब) व्यवस्थापक मंडल-संबंधी अधिकार—प्रांतीय व्यवस्थापक

मंडल का साल में एक अधिवेशन अवश्य होता है। किंतु गवर्नरों को अपने विवेक के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं अथवा एक सभा की बैठक कराने, उनको विसर्जित करने तथा प्रांतीय असेंबली को भंग करने का अधिकार दिया गया है। अपने विवेक के अनुसार गवर्नर प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के संयुक्त अधिवेशन में, अथवा किसी सभा के अधिवेशन में भाषण दे सकते हैं, और अपना संदेश भेज सकते हैं। गवर्नर या उनके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सम्मुख व्यवस्थापक मंडल, अथवा व्यवस्थापक सभा के सदस्यों को राजभक्ति की शपथ खानी पड़ती है। व्यवस्थापक मंडल अथवा सभा से अलग होने के लिए सदस्य अपना त्यागपत्र गवर्नर के पास भेजते हैं। व्यवस्थापक मंडल अथवा सभा द्वारा पास किये गये प्रस्ताव गवर्नर की अनुमति के बिना क़ानून नहीं बन सकते। गवर्नर को अधिकार है कि वे अपने विवेक के अनुसार किसी प्रस्ताव के संबंध में अनुमति दें या न दें या उसे गवर्नर जनरल की अनुमति के लिए रिज़र्व कर दें, या व्यवस्थापक मंडल या सभा के पास पुनर्विचार के लिए भेज दें। इनके अतिरिक्त गवर्नरों को भी असाधारण परिस्थिति में ऑर्डीनेंसें जारी करने और गवर्नरों के एक्ट बनाने का अधिकार दिया गया है।

(स) अर्थिक अधिकार—प्रांतीय व्यय की सारी माँगें, गवर्नर की सिफ़ारिश पर प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल अथवा सभा में पेश की जाती हैं। व्यय के दो भाग होते हैं—

(१) वह व्यय जिसका उल्लेख एक्ट में किया गया है और (२) वह व्यय जिसकी माँग प्रथम माँग के अतिरिक्त पेश की जाती है।

अमुक माँग प्रथम भाग की है अथवा द्वितीय की, इसका निर्णय गवर्नर अपने विवेक के अनुसार करते हैं। प्रथम प्रकार की माँगों पर व्यवस्थापक मंडल अथवा सभा को वोट देने का अधिकार नहीं होता। परंतु दूसरी प्रकार की माँगें प्रांतीय असेंबली के वोट पर निर्भर होती हैं। यदि असेंबली किसी माँग को अस्वीकृत करती या घटाती है और उसका संबंध गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व से होता है तो गवर्नर अस्वीकृत अथवा घटायी गयी माँग को पुनः असेंबली में पेश कर सकते हैं। इस बार न तो उस पर बहस होती है और न वोटिंग। वह माँग स्वतः मंज़ूर समझी जाती है।

(द) अधिकारों की सीमा—प्रांतीय गवर्नरों के अधिकार अपरिमित नहीं हैं। साधारणतः वे मंत्रि-मंडल की सहायता और परामर्श से प्रांतीय शासन का संचालन करते हैं। व्यक्तिगत् निर्णय के कामों में मंत्रियों का परामर्श लेना आवश्यक है, पर अंतिम निर्णय स्वयं गवर्नर का होता है। विवेक के कामों में मंत्रियों का परामर्श लेना आवश्यक नहीं। इन सब कामों को प्रांतीय गवर्नर, गवर्नर जनरल के निरीक्षण में उनके आदेशानुकूल करते हैं। उपर्युक्त क़ानूनी अधिकारों पर कार्यरूप में, प्रांतीय गवर्नर कहाँ तक अमल कर सकेंगे, यह बहुत कुछ भारतीय राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर होगा।

प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल (Legislature)—नये शासन-विधान के अनुसार छः प्रांतों (बंगाल, मद्रास, बंबई, संयुक्त-प्रांत, बिहार और आसाम) के लिए दो सभाओं के व्यवस्थापक मंडल की व्यवस्था की गयी है और शेष प्रांतों के लिए एक व्यवस्थापक सभा की। जिन प्रांतों में दो सभाएँ हैं, वहाँ की बड़ी और छोटी सभाओं का नाम क्रमशः लेजिस्लेटिव कौंसिल और लेजिस्लेटिव असेंबली हैं। उनको साधारण बोलचाल में प्रांतीय कौंसिल और प्रांतीय असेंबली ही कहते हैं। जिन प्रांतों में केवल एक ही व्यवस्थापक सभा है वहाँ उसको लेजिस्लेटिव असेंबली (Legislative Assembly) या केवल असेंबली कहते हैं।

व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की योग्यताएँ (Qualifications)—व्यवस्थापक मंडल के सदस्य बनने के लिए निम्न-लिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(अ) ब्रिटिश प्रजा होना, या संघांतरित देशी रियासत का नरेश अथवा प्रजा होना या किसी ऐसी देशी रियासत का नरेश अथवा प्रजा होना जिसकी व्यवस्था कर दी जाय।

(ब) लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए कम से कम ३० बरस की आयु का होना, और असेंबली के लिए २५ बरस की।

(स) उस निर्वाचन-संघ में जहाँ से वह खडा हो रहा हो अथवा उसी प्रकार के अन्य निर्वाचन क्षेत्रों में मताधि-कारी होना। और

(द) उन अयोग्यताओं से मुक्त होना जिनका उल्लेख एक्ट में किया गया है।

प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल—भिन्न भिन्न प्रांतोंकी लेजिस्लेटिव कौंसिल के आकार का पता हमें अगले पृष्ठ की तालिका से चलता है। उससे हमें विदित होता है कि कौंसिल का चुनाव सांप्रदायिक आधार पर होता है। प्रत्येक कौंसिल के कुछ सदस्यों को गवर्नर मनोनीत करते हैं। सदस्यों का कार्यकाल नौ बरस है, परंतु एक तिहाई सदस्य प्रति तीसरे बरस चुने जाते हैं। पहले निर्वाचन में एक तिहाई व्यक्ति तीन बरस के लिए चुने गये हैं, एक तिहाई छः बरस के लिए और शेष एक तिहाई नौ बरस के लिए। इस अवधि के समाप्त होने पर प्रत्येक सदस्य का चुनाव नौ बरस के लिए होगा। कौंसिल के रिक्त स्थान पहले सदस्य के शेष काल के ही लिए भरे जाते हैं। कौंसिल के ही दो सदस्य उसके सभापति और उप-सभापति होते हैं। वे उसके सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

लेजिस्लेटिव कौंसिल के निर्वाचक (Voters)—कौंसिल के निर्वाचकों की योग्यताएँ भिन्न भिन्न प्रांतों में अलग अलग हैं। साधारणतः हम उनको चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—निवास-संबंधी योग्यताएँ, साधारण योग्यताएँ, स्त्रियों की विशेष योग्यताएँ, और दलित जातियों की योग्यताएँ। संयुक्त प्रांत में निम्नलिखित योग्यताओंवाले व्यक्तियों को निर्वाचकों की सूची में नाम लिखाने का अधिकार दिया गया है—

निवास-संबंधी—निर्वाचन क्षेत्र के निवासी।

लेजिस्लेटिव कौंसिलों का संगठन

१	२		३	४	५	६	७	८	
प्रांत	कुल स्थान		साधारण स्थान	मुसलिम स्थान	युरोपियन स्थान	भारतीय ईसाइयों के स्थान	लेजिस्लेटिव असेंबली द्वारा निर्वाचन होनेवाले स्थान	गवर्नर द्वारा मनोनीत	
मद्रास ..	कम से कम	५४	३५	७	१	३	०	कम से कम	८
	अधिक से अधिक	५६						अधिक से अधिक	१०
बंबई ..	कम से कम	२९	२०	५	१	०	०	कम से कम	३
	अधिक से अधिक	३०						अधिक से अधिक	४
बंगाल ..	कम से कम	६३	१०	१७	३	०	२७	कम से कम	६
	अधिक से अधिक	६५						अधिक से अधिक	८
संयुक्त प्रांत	कम से कम	५८	३४	१७	१	०	०	कम से कम	६
	अधिक से अधिक	६०						अधिक से अधिक	८
बिहार ..	कम से कम	२९	९	४	१	०	१२	कम से कम	३
	अधिक से अधिक	३०						अधिक से अधिक	४
आसाम ..	कम से कम	२१	१०	६	२	०	०	कम से कम	३
	अधिक से अधिक	२२						अधिक से अधिक	४

साधारण—(अ) गत् वर्ष में ४,००० रुपये या अधिक पर आय-कर देनेवाले व्यक्ति।

(ब) दीवान बहादुर, खाँ बहादुर, राय बहादुर, राव बहादुर या इनसे ऊँची पदवी प्राप्त व्यक्ति।

(स) २५० रुपये मासिक पेंशन पानेवाले व्यक्ति।

(द) वे मनुष्य जो निम्नलिखित पदों पर कभी रहे हों या उस समय हों—ब्रिटिश भारत के किसी व्यवस्थापक मंडल के ग़ैर-सरकारी सदस्य; किसी विश्व विद्यालय के चांसेलर, प्रो० चांसेलर, वाइस-चांसेलर, प्रो० वाइस-चांसेलर, फेलो और कोर्ट या सेनेट के सदस्य; संघीय न्यायालय, हाईकोर्ट या चीफ़ कोर्ट के न्यायाधीश; किसी म्युनिसिपिल्टी या ज़िला बोर्ड के ग़ैर-सरकारी सभापति।

(य) १,००० रुपये सालाना या अधिक मालगुज़ारी देनेवाले व्यक्ति, या इतने ही टैक्स की माफ़ी ज़मीन के मालिक। और

(र) १,५०० रुपये सालाना लगान देनेवाले असामी।

स्त्रियों-संबंधी—ऐसी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया गया है जिनके पतियों में निम्नलिखित योग्यताएँ पायी जाती हों—

(क) गत् वर्ष १०,००० रुपये या अधिक पर आय-कर देनेवाले व्यक्ति।

(ख) ५,००० रुपये सालाना मालगुज़ारी देनेवाले व्यक्ति।

(ग) दीवान बहादुर, ख़ाँ बहादुर, राय बहादुर, राव बहादुर या इनसे ऊँची पदवी प्राप्त व्यक्ति। और

(घ) २५० रुपये मासिक सरकारी पेंशन पानेवाले व्यक्ति।

दलित जातियों-संबंधी—(क) २,००० रुपये या अधिक पर आय-कर देनेवाले व्यक्ति।

(ख) २०० रुपये सालाना या अधिक मालगुज़ारी देनेवाले व्यक्ति।

(ग) ५०० रुपये सालाना या अधिक लगानवाली भूमि के असामी। और

(घ) जिनको गवर्नर जनरल ने कोई टाइटिल दिया हो।

प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेंबली—भिन्न भिन्न प्रांतों की लेजिस्लेटिव असेंबली के आकार का पता हमें अगले पृष्ठ की तालिका से चलता है। उससे हमें विदित होता है कि असेंबली के चुनाव के लिए प्रत्येक प्रांत सांप्रदायिक आधार पर बारह प्रकार के निर्वाचन-संघों में विभक्त किया गया है; सीमांत पश्चिमोत्तर प्रदेश और सिंध को छोड़कर, प्रत्येक प्रांत के साधारण स्थानों में से कुछ स्थान दलित जातियों के लिए सुरक्षित कर दिये गये हैं। संयुक्त प्रांत में इस प्रकार के स्थानों की संख्या बीस है। कुछ प्रांतों में असभ्य प्रदेशों और जातियों के लिए भी कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं। असेंबली का कार्यकाल पाँच बरस है। परंतु वह इसके पहले भी भंग की जा सकती है। पाँच बरस की अवधि समाप्त होने पर असेंबली के स्वतः भंग हो जाने की व्यवस्था की गयी है। असेंबली के रिक्त स्थान पहले सदस्य के शेष काल के ही लिए भरे जाते हैं। असेंबली के प्रमुख (Speaker)

प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेंबलियों का संगठन

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
		साधारण स्थान												महिलाओं के स्थान				
प्रांत	कुल स्थान	कुल साधारण स्थान	दलित जातियों के लिए संरक्षित साधारण स्थान	असभ्य ज़िलों और जातियों के प्रतिनिधियों के स्थान	सिख	मुसलमान	ऐंग्लो-इंडियन	यूरोपियन	भारतीय ईसाई	वाणिज्य व्यवसाय आदि	ज़मींदार	विश्वविद्यालय	मज़दूर	साधारण	सिख	मुसलमान	ऐंग्लो-इंडियन	भारतीय ईसाई
मद्रास ..	२१५	१४६	३०	१	०	२८	२	३	८	६	६	१	६	६	०	१	०	१
बंबई ..	१७५	११४	१५	१	०	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	०	१	०	०
बंगाल ..	२५०	७८	३०	०	०	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	०	२	१	०
संयुक्त-प्रांत ..	२२८	१४०	२०	०	०	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	०	२	०	०
पंजाब ..	१७५	४२	८	०	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	०	०
बिहार ...	१५२	८६	१५	७	०	३९	१	२	१	४	४	१	३	३	०	१	०	०
मध्यप्रांत और बरार	११२	८४	२०	१	०	१४	१	१	०	२	३	१	२	३	०	०	०	०
आसाम ..	१०८	४७	७	९	०	३४	०	१	१	११	०	०	४	१	०	०	०	०
पश्चिमोत्तर सीमांत प्रांत	५०	९	०	०	३	३६	०	०	०	०	२	०	०	०	०	०	०	०
उड़ीसा ..	६०	४४	६	५	०	४	०	०	१	१	२	०	१	२	०	०	०	०
सिंध ..	६०	१८	०	०	०	३३	०	२	०	२	२	०	१	१	०	१	०	०

और उप-प्रमुख (Deputy Speaker) उसके सदस्यों में से उन्हीं के द्वारा चुने जाते हैं।

असेंबली के निर्वाचक—असेंबली के निर्वाचकों की योग्यताएँ भिन्न भिन्न प्रांतों में अलग अलग हैं। साधारणतः हम उनको छः भागों में विभक्त कर सकते हैं—निवास-संबंधी, टैक्स-संबंधी, संपत्ति-संबंधी, शिक्षा-संबंधी, सरकारी नौकरी-संबंधी और स्त्रियों-संबंधी। किसी निर्वाचन क्षेत्र में वे ही मनुष्य वोट दे सकते हैं, जिनका नाम निर्वाचकों की सूची में हो। संयुक्त-प्रांत में साधारण स्थानों के निर्वाचकों की सूची में नाम लिखाने के लिए निम्न-लिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(अ) निर्वाचन क्षेत्र का निवासी।

(ब) गत वर्ष में आय-कर या १५० रुपये सालाना आय पर म्युनिसिपल टैक्स देनेवाले व्यक्ति।

(स) २४ रुपये सालाना मकान के मालिक या किरायेदार।

(द) अपर प्राइमरी अथवा उसके समान अन्य कक्षा पास मनुष्य।

(य) सम्राट् की स्थायी सेना का अवकाश ग्रहीत या पेंशन पानेवाला या छुड़ाया गया अफ़सर या सैनिक।

निम्नलिखित योग्यताओंवाली महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया गया है—

(अ) सम्राट् की स्थायी सेना के अफ़सरों या सैनिकों की पेंशन प्राप्त विधवाएँ अथवा माताएँ।

(ब) निर्धारित सीमा तक पढ़ी लिखी स्त्रियाँ।

(स) ऐसे पुरुषों की पत्नियाँ जो निर्वाचन-क्षेत्र के अंदर ऐसे मकान के मालिक अथवा किरायेदार हों जिसका सालाना किराया ३६ रुपये हो; जिन्होंने पिछले साल में २०० रुपये सालाना आमदनी पर म्युनिसिपल टैक्स दिया हो; जो २५ रुपये सालाना मालगुज़ारी की ज़मीन के मालिक हों; जिन्होंने पिछले साल में आय-कर दिया हो; जो सम्राट् की स्थायी सेना के अवकाश ग्रहीत, या पेंशन प्राप्त या छुड़ाये गये अफ़सर या सैनिक हों।

सदस्यता के अनधिकारी—निम्नलिखित प्रकार के मनुष्य व्यवस्थापक मंडल की किसी भी सभा के सदस्य चुने जाने के अधिकार से वंचित रखे गये हैं—

(१) वैतनिक सरकारी कर्मचारी।

(२) वे मनुष्य जिनको किसी उपयुक्त न्यायालय ने पागल ठहराया हो।

(३) वे दिवालिये जिन्होंने अपना भुगतान न किया हो।

(४) निर्वाचन-संबंधी अपराधों के दोषी, निर्धारित काल तक सदस्य नहीं हो सकते।

(५) फौजदारी अपराध के कारण दो बरस या कालेपानी की सज़ा पाये हुए व्यक्ति सज़ा समाप्त होने के पाँच बरस तक उम्मेदवार नहीं हो सकते। गवर्नर अपने विवेक के अनुसार इस अवधि को घटा सकते हैं।

(६) निर्धारित काल तक निर्वाचन-संबंधी व्यय का ब्योरा न भेजनेवाले व्यक्ति पाँच बरस तक उम्मेदवार नहीं हो सकते।

(७) वे मनुष्य व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा के सदस्य नहीं चुने जा सकते जो किसी फौजदारी अपराध अथवा कालेपानी की सज़ा भोग रहे हों। यदि व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा में कोई ऐसा मनुष्य वोट देता है जो उसका अधिकारी नहीं है, तो उससे ५०० रुपये रोज़ जुर्माना लेने की व्यवस्था की गयी है।

व्यवस्थापक मंडल के अधिकार—संघीय व्यवस्थापक मंडल की भाँति प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के तीन प्रकार के अधिकार हैं—

(अ) शासन-निरीक्षण का अधिकार—प्रांतीय गवर्नर अपने विवेक और व्यक्तिगत् निर्णय के कामों को छोड़कर, शेष सभी काम मंत्रि-मंडल की सहायता और परामर्श से करते हैं। इन सब कामों के लिए मंत्रि-मंडल व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रश्न, विरोधसूचक प्रस्ताव, अधिवेशन को स्थगित करने के प्रस्ताव या अविश्वास के प्रस्ताव को पास करके व्यवस्थापक मंडल, मंत्रि-मंडल की नीति और कामों की आलोचना करता है। अविश्वास के प्रस्ताव के पास होने पर मंत्रि-मंडल को साधारणतः अपना पद त्यागना पड़ता है।

(ब) नियम-निर्माण का अधिकार—प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल को प्रांतीय विषयों के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। वह संयुक्त विषयों के भी नियम बना सकता है, लेकिन इस शर्त

पर कि इन विषयों के संघीय नियम प्रांतीय नियमों से उच्चतर होंगे और प्रांतीय नियम साधारणतः विरोधात्मक अंश तक रद समझे जायँगे।

(स) आर्थिक अधिकार—प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के सम्मुख प्रति वर्ष प्रांतीय आय-व्यय का ब्योरा पेश किया जाता है। व्यय-संबंधी ब्योरे के दो भाग होते हैं। गवर्नर के आर्थिक अधिकारों के संबंध में हम उनका ब्योरा लिख चुके हैं। प्रथम भाग का व्यय व्यवस्थापक मंडल के अधीन नहीं है। पर वह उस पर तर्कवितर्क कर सकता है। दूसरे भाग का व्यय असेंबली के मतानुकूल किया जाता है। यदि असेंबली किसी माँग को अस्वीकार करती या घटाती है, और उसका संबंध गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व से होता है, तो गवर्नर अस्वीकृत अथवा घटायी गयी रक़म को असेंबली में पुनः पेश कर सकते हैं। इस बार बिना तर्कवितर्क अथवा वोटिंग हुए, वह रक़म स्वतः स्वीकार समझी जाती है।

(द) व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों की सीमा—संघीय व्यवस्थापक मंडल की भाँति प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के भी अधिकार परिमित हैं। गवर्नर के विशेष उत्तरदायित्व और विवेक एवं व्यक्तिगत् निर्णय के कामों पर उसका कोई अधिकार नहीं। प्रांतीय आय का बहुत बड़ा भाग उसकी अनुमति के बिना ही ख़र्च किया जाता है। उसके नियम बनाने के अधिकार भी परिमित हैं। कुछ विषयों के प्रस्ताव व्यवस्थापक मंडल में आ ही नहीं सकते, जैसे पार्लमेंट के एक्टों के रद करने के प्रस्ताव। कुछ विषयों के प्रस्तावों

के पेश होने के लिए गवर्नर जनरल और गवर्नरों की पूर्व अनुमति आवश्यक होती है। इनके अतिरिक्त गवर्नरों को भी ऑर्डीनेंसें जारी करने और गवर्नरों के एक्ट बनाने का अधिकार है।

नियम-निर्माण की प्रणाली—जिन प्रांतों में केवल एक ही सभा का व्यवस्थापक मंडल है, वहाँ की नियम-निर्माण की प्रणाली बड़ी सरल है। सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव गवर्नर की अनुमति के लिए उनके पास भेज दिया जाता है, और गवर्नर की अनुमति प्राप्त करने के बाद क़ानून हो जाता है, जब तक सम्राट् उसे रद् न करें। गवर्नर की अनुमति-प्राप्त किसी प्रस्ताव को, यदि सम्राट् रद् करते हैं तो उसकी सार्वजनिक घोषणा करने की व्यवस्था की गयी है। जिन प्रांतों के व्यवस्थापक मंडल की दो सभाएँ हैं, उनमें किसी प्रस्ताव के नियम बनने के लिए यह आवश्यक है कि दोनों सभाएँ उसे पास करें। दोनों सभाओं में पास होने पर ही वह प्रस्ताव गवर्नर की अनुमति के लिए भेजा जा सकता है। दोनों सभाओं में मतभेद होने पर या तो प्रस्ताव गिर जाता है, या एक बरस के पश्चात् दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन होता है। संयुक्त अधिवेशन में कौंसिल का सभापति, सभापति का आसन ग्रहण करता है। ऐसे अधिवेशन का निर्णय दोनों सभाओं का निर्णय समझा जाता है।

प्रांतीय स्वराज्य—उपर्युक्त प्रांतीय शासन के समझने के पश्चात् अब हमें यह जान लेना चाहिये कि नये शासन-विधान के अनुसार किस हद तक भातरवर्ष में प्रांतीय स्वराज्य स्थापित किया

गया है। विशेष उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत् निर्णय और विवेक के कामों के कारण मंत्रि-मंडल का कार्यक्षेत्र सीमाबद्ध कर दिया गया है। प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के भी अधिकार परिमित हैं। बड़ी सभा के कारण असेंबली के कामों में अड़चन होने की आशंका है। सांप्रदायिक निर्वाचन के कारण राष्ट्रीयता के आधार का अभाव है। इन सब बातों के कारण प्रांतीय स्वराज्य का रंग बहुत कुछ फीका पड़ गया है। परंतु उसका कार्यान्वित रूप क्या होगा, यह हमें अभी देखना है। यह तो व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों पर निर्भर होगा। यदि व्यवस्थापक मंडल में राष्ट्रवादियों का ज़ोर रहा और नये चुनाव में उनके हारने की आशंका न हुई तो संभवतः गवर्नर के व्यक्तिगत् निर्णय या विवेक के अधिकारों पर अमल न हो सकेगा। तब प्रांतीय स्वराज्य में भी कुछ तत्व होगा। परंतु यदि व्यवस्थापक मंडल में प्रतिक्रियावादी सदस्यों का आधिक्य रहा, तो संभव है कि गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का उपयोग करें। विशेष अधिकार प्रायः हर एक क्षेत्र में हैं। ऐसी अवस्था में प्रांतीय स्वराज्य भी नाममात्र को ही स्थापित होगा।

अभ्यास

१—गवर्नरों के विशेष उत्तरदायित्व और आदेश-पत्र पर टिप्पणियाँ लिखिये।

२—नये शासन-विधान के अनुसार प्रांतीय शासन में गवर्नरों के कौन कौन से अधिकार हैं ?

३—संयुक्त प्रांत के व्यवस्थापक मंडल में कितनी सभाएँ हैं ? बड़ी सभा के संगठन का विवरण लिखिये।

४—संयुक्त प्रांतीय असेंबली के संगठन का विवरण लिखिये।

५—प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के निर्वाचन में कौन कौन व्यक्ति उम्मेदवार हो सकते हैं और कौन नहीं ?

६—प्रांतीय असेंबली और कौंसिल के निर्वाचकों में किन किन योग्यताओं का होना आवश्यक है ?

७—प्रांतीय व्यवस्थापक मंडल के अधिकारों का विवरण लिखिये।

८—नये शासन-विधान के अनुसार प्रांतीय स्वराज्य स्थापित हुआ है अथवा नहीं ? यदि स्थापित हुआ है तो किस हद तक ?

सोलहवाँ अध्याय

संघीय न्यायालय और हाईकोर्ट

(Federal Court)

प्राक्कथन—संघीय न्यायालय का संगठन—संघीय न्यायालय के अधिकार—हाईकोर्ट—हाईकोर्ट के अधिकार—अन्य न्यायालय—रिजर्व बैंक—संघीय रेलवे अॅथारिटी।

प्राक्कथन—लिखित बेलचक शासन-विधान और वैधानिक कार्य-विभाजन के अतिरिक्त प्रायः सभी संघ शासन-विधानों में एक और विशेषता होती है। वह है न्यायालयों का विशेष स्थान। लिखित शासन-विधान की धाराओं का वास्तविक अर्थ संघीय न्यायालय ही निश्चित करता है। यदि संघ सरकार और संघांतरित सरकारों में या स्वयं संघांतरित सरकारों में आपस में किसी प्रकार का मतभेद होता है तो संघीय न्यायालय ही उस झगड़े का निर्णय करता है। इन्हीं कारणों से भारतवर्ष के नये शासन-विधान में संघीय न्यायालय की व्यवस्था की गयी है।

नये शासन-विधान के पूर्व समस्त भारतवर्ष का कोई न्यायालय न था। प्रांतीय हाईकोर्ट ही सबसे बड़े न्यायालय थे और उनके निर्णय की अपील प्रिवी कौंसिल में हुआ करती थी। बहुत दिनों से कुछ भारतवासी एक अखिल भारतीय न्यायालय स्थापित करने के पक्ष में थे। संघीय न्यायालय के कारण उनकी यह माँग कुछ अंश में पूरी हो गयी है।

संघीय न्यायालय का संगठन—सन् १९३५ के शासन-विधान द्वारा संघीय न्यायालय के लिए एक प्रधान न्यायाधीश और अधिक से अधिक छः न्यायाधीशों की व्यवस्था की गयी है। जब तक संघीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाएँ न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने की प्रार्थना न करें, तब तक यह संख्या बढ़ायी न जा सकेगी। प्रधान न्यायाधीश और न्यायाधीशों के नियुक्त करने का अधिकार सम्राट् को दिया गया है। ६५ बरस की अवस्था प्राप्त करने पर कोई व्यक्ति न्यायाधीश अथवा प्रधान न्यायाधीश नहीं रह सकता। इसके पूर्व भी वह त्यागपत्र देकर न्यायालय से अलग हो सकता है। प्रिवी कौंसिल की रिपोर्ट पर सम्राट् किसी न्यायाधीश या प्रधान न्यायाधीश को शारीरिक या मानसिक दुर्बलता अथवा दुराचरण के लिए निकाल सकते हैं।

इस न्यायालय के न्यायाधीश बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) ब्रिटिश भारत या संघांतरित रियासतों के हाईकोर्ट का पाँच साल का अनुभवी न्यायाधीश।

(२) इँगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का दस बरस का अनुभवी बैरिस्टर।

(३) स्कॉटलैंड का दस बरस का अनुभवी ऐडवोकेट।

(४) ब्रिटिश भारतीय अथवा देशी रियासतों में वकालत करनेवाला दस बरस का अनुभवी वकील।

प्रधान न्यायाधीश के लिए उपर्युक्त प्रथम योग्यता में कोई

अंतर नहीं है; किंतु दूसरी, तीसरी और चौथी योग्यताओं में दस बरस के स्थान में पंद्रह बरस का अनुभव आवश्यक है। वे ही व्यक्ति प्रधान न्यायाधीश के पद पर नियुक्त किये जा सकते हैं, जो नियुक्ति के समय इँगलैंड या उत्तरी आयरलैंड के बैरिस्टर, या स्कॉटलैंड के एडवोकेट या भारतवर्ष के वकील हों। पहली योग्यता-वाले व्यक्तियों को भी नियुक्ति के समय उपर्युक्त योग्यता का बैरिस्टर, एडवोकेट या वकील होना चाहिये। यदि संघीय प्रधान न्यायाधीश का स्थान थोड़े दिनों के लिए खाली होगा, तो गवर्नर जनरल उस स्थान को भर सकेंगे। प्रत्येक न्यायाधीश को राजभक्ति की शपथ खानी पड़ती है। न्यायाधीशों को ५,५०० रुपये मासिक वेतन मिलता है और प्रधान न्यायाधीश को ७,००० रुपये मासिक। किसी न्यायाधीश अथवा प्रधान न्यायाधीश के कार्यकाल में उसका वेतन घटाया नहीं जा सकता।

पहली अक्टूबर सन् १९३७ से संघीय न्यायालय अपना काम कर रहा है। उसमें इस समय प्रधान न्यायाधीश और दो न्यायाधीश हैं।

संघीय न्यायालय के अधिकार—संघीय न्यायालय के अधिकार दो प्रकार के हैं—

(१) कुछ मुक़दमें ऐसे हैं जो संघीय न्यायालय में ही आरंभ हो सकते हैं और

(२) कुछ ऐसे जिनकी वह अपील सुनता है।

ऐसे मुक़दमें जो संघीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच में

या संघ सरकार और देशी रियासतों के बीच में किसी क़ानूनी अधिकार के कारण होंगे, संघीय न्यायालय में ही आरंभ होंगे। हाईकर्ट के कुछ फैसलों की अपीलें संघीय न्यायालय में होंगी। यदि किसी मुक़दमे के विषय में हाईकोर्ट यह प्रमाणित करेगा कि उसका संबंध शासन-विधान या स-कौंसिल सम्राट् के किसी ऑर्डर के अर्थ से है, तो हाईकोर्ट के निर्णय के प्रतिकूल ऐसे मुक़दमों की अपीलें संघीय न्यायालय में की जायँगी, सीधे प्रिवी कौंसिल में नहीं। शासन-विधान और स-कौंसिल सम्राट् के ऑर्डरों के वास्तविक अर्थ से संबंध रखनेवाले संघीय न्यायालय के निर्णयों की अपीलें प्रिवी कौंसिल में होंगी। गवर्नर जनरल को अपने विवेक के अनुसार संघीय न्यायालय से किसी क़ानूनी प्रश्न के विषय में सलाह लेने का अधिकार दिया गया है। परंतु उसकी सलाह मानना गवर्नर जनरल के लिए अनिवार्य नहीं है। संघीय व्यवस्थापक मंडल को संघीय न्यायालय के अपील-संबंधी अधिकारों के बढ़ाने का अधिकार दिया गया है। संघीय न्यायालय का सारा काम-काज अँगरेज़ी में किया जाता है।

हाईकोर्ट—संघीय न्यायालय के अतिरिक्त बंबई, कलकत्ता, मद्रास, इलाहाबाद, पटना और लाहौर में हाईकोर्ट हैं। प्रत्येक हाईकोर्ट में एक प्रधान न्यायाधीश और कई न्यायाधीश होते हैं। उनको सम्राट् नियुक्त करते हैं। किसी न्यायाधीश की अवस्था ६० बरस से अधिक नहीं हो सकती। इस अवस्था के पूर्व भी कोई न्यायाधीश त्यागपत्र द्वारा हाईकोर्ट से अलग हो सकता है,

और सम्राट् प्रिवी कौंसिल की रिपोर्ट पर किसी न्यायाधीश को शारीरिक या मानसिक दुर्बलता अथवा दुराचरण के लिए निकाल सकते हैं।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश बनने के लिए निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

(१) इँगलैंड या उत्तरी आयरलैंड का दस बरस का अनुभवी बैरिस्टर।

(२) स्कॉटलैंड का दस बरस का अनुभवी एडवोकेट।

(३) दस बरस पुराना सिविल सर्विस का सदस्य जो कम से कम तीन बरस तक ज़िला जज रहा हो; और

(४) हाईकोर्ट या दूसरे न्यायालयों का दस बरस का अनुभवी वकील।

हाईकोर्ट के प्रत्येक न्यायाधीश को राजभक्ति की शपथ खानी पड़ती है। उसको निर्धारित वेतन मिलता है जो उसके कार्यकाल में घटाया नहीं जा सकता। हाईकोर्ट में अधिक काम होने पर गवर्नर जनरल को दो बरस के लिए अतिरिक्त (Additional) न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है।

हाईकोर्ट के अधिकार—कलकत्ता, बंबई और मद्रास के हाईकोर्टों में कुछ मुक़दमें आरंभ हो सकते हैं, परंतु साधारणतः हाईकोर्टों में अपीलें ही सुनी जाती हैं। ये अपीलें फौजदारी और दीवानी दोनों प्रकार के मुक़दमों की होती हैं। हाईकोर्ट के निर्णय के प्रतिकूल संघीय न्यायालय और प्रिवी कौंसिल में अपील की

जा सकती है। आजकल किसी दीवानी मुक़दमे की अपील प्रिवी कौंसिल में तब तक नहीं हो सकती जब तक वह १०,००० रुपये से अधिक की न हो।

अन्य न्यायालय—इन न्यायालयों के अतिरिक्त, देश भर में अन्य छोटे छोटे न्यायालयों का जाल फैला हुआ है। प्रत्येक ज़िले में एक ज़िला न्यायाधीश (District & Sessions Judge) होता है। यह ज़िले के अन्य न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों के दीवानी और फौजदारी निर्णयों की अपीलें सुनता है। उसके निर्णय के प्रतिकूल हाईकोर्ट में अपील की जाती है।

उपर्युक्त विवरण से हमें यह विदित होता है कि भारतवर्ष में न्याय की समुचित व्यवस्था की गयी है। अपीलों की व्यवस्था के कारण, अन्याय को मिटाने या न्यायाधीशों की भूल सुधारने का अच्छा प्रबंध है। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि यहाँ की न्याय-व्यवस्था आदर्श है। कुछ लोगों का कहना है कि भारतीय न्याय व्ययसाध्य है। दूसरे कहते हैं कि इसमें विलंब का दोष है। मुक़दमों के निर्णय में बड़ी देर लगती है। कुछ लोग शासकों के न्याय-संबंधी अधिकारों के विरोधी हैं। भारतीय कांग्रेस बहुत दिनों से शासक-मंडल और न्यायाधीशों के पृथक् करने की कोशिश कर रही है।

रिज़र्व बैंक—संघ सरकार स्थापित होने के पूर्व उसकी आर्थिक स्थिरता की समुचित व्यवस्था, रिज़र्व बैंक स्थापित करके कर दी गयी है। रिज़र्व बैंक की आवश्यकता पर ब्रिटिश-सरकार ने भी

ज़ोर दिया था। सन् १९३४ में ब्रिटिश सरकार के संकेतानुसार भारतीय व्यवस्थापक मंडल ने रिज़र्व बैंक-संबंधी प्रस्ताव पास किया, और सन् १९३५ में रिज़र्व बैंक ने अपना काम आरंभ कर दिया। बैंक की पूँजी ५ करोड़ रुपये है। यह सौ-सौ रुपये के हिस्सों में विभक्त है। बैंक का काम-काज देखने के लिए एक केंद्रीय बोर्ड स्थापित किया गया है। इसमें गवर्नर जनरल के द्वारा नियुक्त एक गवर्नर, दो डिप्टी गवर्नर और चार संचालक और हिस्सेदारों द्वारा निर्वाचित आठ संचालक होते हैं। रिज़र्व बैंक-संबंधी कोई बिल गवर्नर जनरल की पूर्व अनुमति बिना संघीय व्यवस्थापक मंडल में पेश नहीं किया जा सकता। रिज़र्व बैंक का काम है, भारतवर्ष की आर्थिक स्थिरता का क़ायम रखना, बैंक-नोट जारी करना और मुद्रा की स्थिरता के लिए रिज़र्व में काफ़ी सोना रखना।

संघीय रेलवे ॲथारिटी—नये शासन-विधान के अनुसार रेलवे संघीय विषय निर्धारित किया गया है। उनकी देख-भाल करने और नयी रेलवे बनाने के लिए एक संघीय रेलवे ॲथारिटी की व्यवस्था की गयी है। इस संस्था के अधिक से अधिक सात सदस्य होंगे। इनमें से कम से कम तीन को गवर्नर जनरल अपने विवेक के अनुसार नियुक्त करेंगे। सभापति के नियुक्त करने का भी अधिकार गवर्नर जनरल को ही होगा। कोई व्यक्ति रेलवे ॲथारिटी का सदस्य उस समय तक न नियुक्त किया जायगा, जब तक उसे वाणिज्य, उद्योग, खेती, राजस्व अथवा शासन का अनुभव न हो। सदस्यों की नौकरी की शर्तों, वेतन, भत्ता आदि का

निर्णय गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार करेंगे। अॅथारिटी के सारे निर्णय बहुमत के आधार पर होंगे। मतों के बराबर होने पर सभापति का निर्णायक वोट (Casting vote) देने का अधिकार होगा। रेलवे शासन अथवा आय-व्यय-संबंधी प्रायः सभी बातें इस संस्था के अधीन होंगी। एक रेलवे न्यायालय की भी व्यवस्था की गयी है, जिसके तीन सदस्य होंगे—एक सभापति और दो सदस्य। रेलवे न्यायालय के निर्णय के प्रतिकूल संघीय न्यायालय में अपील की जा सकेगी। संघीय न्यायालय का निर्णय अंतिम निर्णय होगा।

अभ्यास

१—संघीय न्यायालय के संगठन का वर्णन लिखिये। इस न्यायालय के न्यायाधीशों और प्रधान न्यायाधीश में किन योग्यताओं का होना आवश्यक हैं ?

२—संघीय न्यायालय के कौन कौन से अधिकार हैं ?

३—भारतवर्ष में कितने हाईकोर्ट हैं ? हाईकोर्ट और संघीय न्यायालय में क्या संबंध है ?

४—रिजर्व बैंक और संघीय रेलवे अॅथारिटी पर टिप्पणियाँ लिखिये।

सत्रहवाँ अध्याय

भारत-मंत्री और नौकरियाँ

भारत-मंत्री का स्थान—भारत-मंत्री की कौंसिल—भारतीय हाई कमिश्नर—सरकारी नौकरियाँ—नौकरियों का वर्गीकरण—अखिल भारतीय नौकरियाँ, संघीय नौकरियाँ, प्रांतीय नौकरियाँ—पब्लिक सर्विस कमीशन—नौकरियों का भारतीयकरण।

भारत-मंत्री का स्थान—सन् १९१९ के शासन-विधान के अनुसार भारतीय शासन की देख-भाल करने का अधिकार भारत-मंत्री को दिया गया था और यह स्पष्ट कर दिया गया था कि गवर्नर जनरल भारतीय शासन का संचालन उनके आदेशानुकूल करेंगे। नये शासन-विधान में भारतीय शासन के निरीक्षण का अधिकार सम्राट् को दिया गया है, और वे भारत-मंत्री के द्वारा इस अधिकार का उपयोग करेंगे। नयी व्यवस्था के कारण भारत-मंत्री के वास्तविक स्थान में तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, परंतु उनके क़ानूनी स्थान में परिवर्तन अवश्य हो गया है।

सन् १९१९ की भाँति नये शासन-विधान के अनुसार भी भारत-मंत्री, पार्लमेंट और मंत्रि-मंडल के सदस्य होते हैं। साधारणतः भारतवर्ष के संबंध में मंत्रि-मंडल अपनी नीति को उन्हीं के परामर्श के अनुसार निर्धारित करता है। वे विषय जिनमें उत्तरदायी शासन की व्यवस्था नहीं की गयी है, अब भी भारत-मंत्री के अधीन हैं। वे उन विषयों के सुशासन के लिए ब्रिटिश पार्लमेंट के

प्रति उत्तरदायी हैं। विशेष उत्तरदायित्व और विवेक एवं व्यक्तिगत् निर्णय के कामों को गवर्नर जनरल भारत-मंत्री के निरीक्षण में उनके आदेशानुकूल करेंगे।

भारत-मंत्री के निरीक्षण के शिथिल करने का सिद्धांत सन् १९१९ के सुधारों के साथ साथ मान लिया गया था। इस संबंध में संयुक्त पार्लमेंटरी ने कुछ प्रथाओं के चलाने पर ज़ोर दिया था। अतएव क़ानूनी दृष्टि से भारत-मंत्री के निरीक्षण में किसी प्रकार की कमी तो नहीं की गयी थी लेकिन वास्तव में पहले की अपेक्षा उनका निरीक्षण कुछ शिथिल अवश्य हो गया था। नये शासन-विधान के अनुसार भी ब्रिटिश सरकार के क़ानूनी अधिकारों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। वह अब भी पार्लमेंट के प्रति भारतीय शासन और सुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी है। फिर भी उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के कारण, ब्रिटिश सरकार और इस कारण, भारत-मंत्री का भी निरीक्षण पहले को अपेक्षा कुछ शिथिल अवश्य हो जायगा।

भारतमंत्री की कौंसिल (India Council)—सन् १९१९ के सुधारों के अनुसार भारत-मंत्री की कौंसिल में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे। फिर भी भारतवासी इस कौंसिल से संतुष्ट न थे। वे उसे प्रति-क्रियात्मक (Reactionary) कहते थे और उसके तोड़ने का आग्रह करते थे। नये शासन-विधान में उनकी यह माँग भी स्वीकार कर ली गयी है। १ अप्रैल सन् १९३७ को भारत-मंत्री की कौंसिल (India Council) तोड़ दी गयी है पर

उन्हें कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः परामर्शदाताओं के नियुक्त करने का अधिकार दिया गया है। कम से कम आधे परामर्शदाताओं को ऐसा अवश्य होना चाहिये, जो दस बरस तक भारतवर्ष में नौकरी कर चुके हों और जिनको भारतवर्ष छोड़े दो बरस से अधिक न हुआ हो। परामर्शदाताओं का कार्य-काल पाँच बरस निर्धारित किया गया है। कोई मनुष्य एक बार से अधिक परामर्शदाता नहीं नियुक्त किया जायगा। इस व्यवस्था के कारण भारत-मंत्री को ऐसे परामर्शदाता मिलते जायँगे जिन्हें भारतीय परिस्थिति का समुचित ज्ञान होगा।

परामर्शदाताओं को १,३५० पौंड सालाना वेतन मिलता है और जिनका मकान भारतवर्ष में हो उनको इस वेतन के अतिरिक्त ६०० पौंड सालाना भत्ता भी। भारत-मंत्री, उनके परामर्शदाताओं, एवं उनके कार्यालय के कर्मचारियों का वेतन ब्रिटिश कोष से दिया जाता है। भारत-मंत्री को अधिकार है कि वे अपने परामर्शदाताओं का चाहे व्यक्तिगत् परामर्श लें, चाहे सामूहिक; चाहे उनके परामर्श के अनुसार काम करें, चाहे उसके प्रतिकूल। भारतीय नौकरियों के संबंध में कम से कम आधे परामर्शदाताओं को भारत-मंत्री के मत का होना चाहिये।

इन परिवर्तनों के कारण ब्रिटिश मंत्रि-मंडल में भारत-मंत्री का स्थान अब वैसा ही हो गया है जैसा उपनिवेश मंत्री (Colonial Secretary) का। उनके कार्यालय के कर्मचारियों की नौकरी की शर्तें, और उनके अधिकार अब प्रायः वे ही हैं जो अन्य ब्रिटिश नौकरियों के।

भारतीय हाई कमिश्नर—सन् १९१९ के एक्ट के द्वारा भारतीय हाई कमिश्नर की व्यवस्था की गयी थी। नये शासन-विधान में भी उनका पद पूर्ववत् बना हुआ है। गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार भारतीय हाई कमिश्नर को नियुक्त करते हैं। उनकी नौकरी की शर्तें और वेतन आदि को भी गवर्नर जनरल अपने व्यक्तिगत् निर्णय के अनुसार निर्धारित करते हैं। संघ सरकार की ओर से वे उन सब कामों को करते हैं जो गवर्नर जनरल उनसे करने के लिए कहें। गवर्नर जनरल की अनुमति से किसी संघांतरित देशी रियासत या प्रांत या बर्मा की ओर से भी वे उन सब कामों को कर सकते हैं जो संघ सरकार की ओर से।

सरकारी नौकरियाँ—देश का शासन-विधान चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो और उसका सर्वोच्च शासक चाहे कितना ही योग्य क्यों न हो, परंतु योग्य और निष्पक्ष नौकरियों (Services) के बिना वहाँ पर सुव्यवस्थित शासन स्थापित नहीं हो सकता। भारतीय नौकरियाँ अपनी योग्यता और निष्पक्षता के लिए हमेशा से प्रसिद्ध हैं। उनको समुचित वेतन मिलता है। संभवतः संसार के किसी देश में नौकरियों को इतना वेतन नहीं मिलता जितना भारतीय नौकरियों को। उनके और उनके आश्रितों के भी उचित हितों की रक्षा की जाती है। यही नहीं, उत्तरदायी शासन की स्थापना के पूर्व भारतीय शासन-संबंधी नीति के जन्मदाता भी वे ही लोग थे।

उत्तरदायी शासन की नीति के कारण भारतीय नौकरियों के

सदस्य कुछ भयभीत से हो गये हैं। उन्हें इस बात का भय है कि शायद भारतीय उत्तरदायी सरकार उनके हितों की रक्षा न करे। उनका भय निर्मूल नहीं। सभी भारतीय राजनीतिज्ञ नौकरियों के ऊँचे वेतन और अधिकारों से असंतुष्ट हैं। पूर्ण उत्तरदायी सरकार में न तो उनको इतना वेतन ही मिलेगा और न उनके इतने अधिकार ही होंगे। इसी भय के कारण नये शासन-विधान के बनने के पूर्व नौकरियों ने अपने उचित हितों की रक्षा पर काफ़ी ज़ोर दिया था। ब्रिटिश सरकार ने उनकी माँगों को उपयुक्त समझकर उनकी रक्षा की आवश्यक व्यवस्था कर दी है। नये शासन-विधान में नौकरियों और उनके आश्रितों के उचित हितों की रक्षा करना गवर्नर जनरल और गवर्नरों का विशेष उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया है।

नौकरियों का वर्गीकरण—आजकल हम भारतीय नौकरियों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(अ) अखिल भारतीय नौकरियाँ (Imperial Services)—जैसे इंडियन सिविल सर्विस, ंडियन पुलिस सर्विस, इंडियन मेडिकल सर्विस आदि। इन नौकरियों के सदस्य संघीय और प्रांतीय दोनों प्रकार की सरकारों के अधीन काम करते हैं। ये भारत-मंत्री के द्वारा नियुक्त किये जाते हैं और अंत में भारत-मंत्री ही इनके हितों की देख-भाल करते हैं। इनका वेतन व्यवस्थापक मंडल के वोट पर निर्भर नहीं होता। भारत-मंत्री नौकरियों के संबंध की नीति को अपने परामर्शदाताओं के बहुमत के अनुसार निश्चित करते हैं।

इंडियन सिविल सर्विस और इंडियन पुलिस सर्विस के सदस्यों की भरती प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर की जाती है। इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षाएँ भारतवर्ष में होती हैं, और इँगलैंड में भी। परीक्षा में उत्तीर्ण उम्मेदवारों को विलायत में काम सीखने के लिए जाना पड़ता है। उसके बाद वे भारतवर्ष में भिन्न भिन्न स्थानों में नियुक्त किये जाते हैं।

(ब) संघीय नौकरियाँ (Federal Services)—संघीय नौकरियाँ पूर्णतया संघ सरकार के अधीन होंगी। आजकल वे भारत-सरकार के अधीन हैं। इनमें रेलवे सर्विस, इंडियन पोस्ट और टेलीग्राफ सर्विस, संघीय कार्यालय (Federal Secretariate) के कर्मचारी आदि शामिल हैं—इनके नियुक्त करने का अधिकार संघ सरकार को दिया गया है। इनकी भरती भी प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर की जाती है।

(स) प्रांतीय नौकरियाँ (Provincial Services)—प्रांतीय नौकरियाँ प्रांतीय सरकारों के अधीन हैं। इनकी नियुक्ति का अधिकार प्रांतीय सरकारों को दिया गया है। अधिकांश स्थान प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर भरे जाते हैं। प्रांतीय सिविल सर्विस के सदस्य बढ़ते बढ़ते इंडियन सिविल सर्विस के स्थानों पर भी नियुक्त किये जा सकते हैं। इंडियन सिविल सर्विस के कुछ स्थान प्रांतीय सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए रिज़र्व रखे जाते हैं।

इनके अतिरिक्त प्रत्येक प्रांत में और भी अनेक कर्मचारी होते हैं, जिनको भिन्न भिन्न विभागों के अध्यक्ष नियुक्त करते हैं।

पब्लिक सर्विस कमीशन—संघ सरकार और प्रांतीय सरकारों के लिए नये शासन विधान के अनुसार, पब्लिक सर्विस कमीशनों की व्यवस्था की गयी है। केंद्रीय पब्लिक सर्विस कमीशन सन् १९१९ के सुधारों के बाद से ही अपना काम कर रहा था। नये शासन-विधान के अनुसार उसका नाम बदलकर संघीय पब्लिक सर्विस कमीशन कर दिया गया है। प्रांतों के लिए भी ऐसे ही कमीशनों की व्यवस्था की गयी है। पब्लिक सर्विस कमीशनों का काम है प्रतियोगिता परीक्षाओं का संचालन और उपयुक्त उम्मेदवारों की नियुक्ति के लिए सिफ़ारिश करना।

नौकरियों का भारतीयकरण—साधारणतः प्रांतीय नौकरियों के सभी सदस्य भारतवासी होते हैं। संघीय नौकरियों में भी, कुछ को छोड़कर, अधिकांश लोग भारतवासी ही होते हैं। परंतु अखिल भारतीय (Imperial) नौकरियों के अधिकांश सदस्य युरोपियन होते हैं। इन नौकरियों के लगभग ६४ प्रतिशत् सदस्य आज भी युरोपियन हैं।

बहुत दिनों से भारतवासी यह कहते आये हैं कि हमारे देश का शासन हमारे ही अधीन होना चाहिये, युरोपियनों के नहीं। विदेशी लोगों का वेतन अधिक होता है, और भारतवर्ष उतना वेतन नहीं दे सकता। साथ ही वे लोग भारतीय परिस्थिति से भी अनभिज्ञ होते हैं। ब्रिटिश सरकार ने उनके इस सिद्धांत को मान लिया है, और धीरे धीरे नौकरियों का भारतीयकरण हो रहा है, परंतु इसकी गति बड़ी धीमी है। उत्तरदायी शासन को सफल

बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देश की नौकरियाँ उसकी सरकार के अधीन हों और वहीं के निवासी उन पर काम करें। उनका वेतन भी देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार होना चाहिये।

अभ्यास

१—नये शासन-विधान के अनुसार भारत-मंत्री और उनकी कौंसिल में कौन कौन से परिवर्तन किये गये हैं ?

२—भारतीय नौकरियों का वर्गीकरण कीजिये। क्या आप चाहते हैं कि भारतवर्ष की नौकरियों पर भारतवासी ही नियुक्त किये जायें ? क्यों ?

३—उत्तरदायी शासन की स्थापना से भारतीय नौकरियों की स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

४—पब्लिक सर्विस कमीशन और हाई कमिश्नर पर टिप्पणियाँ लिखिये।

अठारहवाँ अध्याय

ज़िले का शासन

कमिश्नर—जिले का शासन, कलक्टर, मालगुज़ारी-संबंधी अधिकार, शासन-संबंधी अधिकार, न्याय-संबंधी अधिकार, निरीक्षण-संबंधी अधिकार अधिकारों की सीमा—कलक्टर के सहकारी अफ़सर—स्थानीय स्वराज्य।

कमिश्नर—शासन के सुभीते के लिए, मद्रास को छोड़कर प्रत्येक प्रांत कई भागों में विभक्त किया गया है। इनको कमिश्नरियाँ कहते हैं। प्रत्येक कमिश्नरी एक कमिश्नर के अधीन होती है। वह भारतीय सिविल सर्विस (Indian Civil Service) का सदस्य होता है। उसके अधिकांश अधिकार मालगुज़ारी और भूमि-संबंधी होते हैं। कुछ बातों में वह ज़िले के शासन का निरीक्षण करता है और स्थानीय स्वराज्य का भी। भारतीय राजनीतिज्ञों का कहना है कि कमिश्नरों के पद की कोई आवश्यकता नहीं है। मद्रास की भाँति अन्य प्रांतों का भी शासन संचालन किया जा सकता है। संभव है कि भविष्य में कमिश्नर के पद के तोड़े जाने की कुछ व्यवस्था की जाय।

ज़िले का शासन, कलक्टर—प्रत्येक कमिश्नरी में कुछ ज़िले होते हैं। भिन्न भिन्न कमिश्नरियों में ज़िलों की संख्या अलग अलग होती है। लखनऊ कमिश्नरी में छः ज़िले हैं और गोरखपुर कमिश्नरी में केवल तीन। कुछ प्रांतों में, ज़िले के सर्वोच्च अधि-

कारी को कलक्टर कहते हैं और कुछ में डिप्टी कमिश्नर। वह साधारणतः इंडियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है। कुछ प्रांतीय नौकरियों के सदस्य भी बढ़ते बढ़ते, ज़िले के अफ़सर बना दिये जाते हैं।

कलक्टर अपने ज़िले में भारत सरकार का प्रतिनिधि रूप होता है। उसके चार प्रकार के अधिकार होते हैं—

(अ) मालगुज़ारी-संबंधी अधिकार—ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करना कलक्टर का काम है। यह उसके नाम से ही विदित है। वह अपने ज़िले की भूमि और हिसाब-संबंधी सारे काग़ज़ों की रक्षा करता है। ज़िले का खज़ाना भी उसी के अधीन होता है।

(ब) शासन-संबंधी अधिकार—ज़िले के शासन की देख-भाल करने का अधिकार कलक्टर को दिया गया है। ज़िले के निवासी शांतिपूर्वक रहें, उन्हें किसी प्रकार की आशंका न हो, लोग नियम-विरुद्ध आचरण न करें, और यदि करें तो गिर-फ़्तार कर लिये जायँ, इन सब बातों की देख-भाल करना कलक्टर का काम है।

(स) न्याय-संबंधी अधिकार—कलक्टर को कुछ न्याय-संबंधी अधिकार भी दिये गये हैं। वह अपने अधीन डिप्टी कलक्टरों के निर्णयों के प्रतिकूल अपील सुन सकता है। कुछ लोगों का कहना है कि कलक्टर के न्याय-संबंधी अधिकार अनुचित हैं। नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है, कि शासन-संबंधी और न्याय-संबंधी अधिकार अलग अलग व्यक्तियों

के अधीन हों। इस सिद्धांत की सत्यता को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। लेकिन अभी तक शासन-विभाग और न्याय-विभाग का पृथक्करण नहीं हुआ है।

(द) निरीक्षण-संबंधी अधिकार—ज़िले के शासन के निरीक्षण करने का अधिकार कलक्टर को दिया गया है। ज़िले के प्रत्येक विभाग के कर्मचारी, जैसे जेलर, सिविल सर्जन, इक्ज़ीक्यूटिव इंजीनियर, पुलिस सुपरिंटेंडेंट आदि अपने अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं या नहीं, यह देखना कलक्टर का काम है। वह स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं का भी निरीक्षण करता है। ज़िला बोर्ड और छोटी म्युनिसिपिल्टियाँ साधारणतः उसी के अधीन होती हैं।

साधारणतः कलक्टर अपने ज़िले के प्रधान नगर में ही रहा करता है। वहीं उसके तथा ज़िले के अन्य कर्मचारियों के कार्यालय होते हैं। परंतु जाड़े में वह अपने ज़िले में दौरा करता है और इस प्रकार ज़िले की जनता के संपर्क में आता है और वहाँ की परिस्थिति की जानकारी हासिल करता है।

(य) अधिकारों की सीमा—उपर्युक्त विवरण से यह न समझना चाहिये कि कलक्टर अपने ज़िले का निरंकुश शासक है। मालगुज़ारी के मामलों में वह कमिश्नर के अधीन है, और न्याय-संबंधी अधिकारों में उसके निर्णय के प्रतिकूल ज़िले के न्यायाधीश की अदालत में अपील की जा सकती है। हर साल उसे अपने ज़िले की उन्नति और सुव्यवस्था का विवरण ऊँचे

पदाधिकारियों के पास भेजना पड़ता है। इस विवरण में वह अपने ज़िले की आवश्यकताओं पर ज़ोर देता है और ज़िले की उन्नति कैसे होगी, इस बात का भी संकेत करता है।

कलक्टर के सहकारी अफ़सर—प्रत्येक ज़िले में कलक्टर की सहायता के लिए अन्य विभागों के भी कुछ ऊँचे पदाधिकारी रहते हैं। वे अपने अपने विभागों के अधीन होते हैं, कलक्टर के अधीन नहीं। परंतु कलक्टर को अपने ज़िले में उनके द्वारा किये गये कामों के निरीक्षण करने का अधिकार होता है। इनमें से निम्नलिखित अफ़सर ध्यान देने योग्य हैं—

(अ) सिविल सर्जन—प्रत्येक बड़े ज़िले में एक सरकारी अस्पताल होता है, जहाँ पर मुफ़्त चिकित्सा की जाती है। बड़े शहरों में वह अस्पताल साधारणतः सिविल सर्जनों के अधीन होता है। उसकी सहायता के लिए कई और डाक्टर भी होते हैं। सिविल सर्जन साधारणतः अखिल भारतीय सर्विस (Imperial Service) का सदस्य होता है। सरकारी अस्पताल के अतिरिक्त प्रत्येक ज़िले में म्युनिसिपिल्टियों, ज़िला बोर्डों, सार्वजनिक संस्थाओं और परोपकारी व्यक्तियों द्वारा खोले गये कई धर्मार्थ औषधालय और अस्पताल होते हैं।

(ब) पुलिस सुपरिंटेंडेंट—प्रत्येक ज़िले में एक पुलिस सुपरिंटेंडेंट होता है। उसका काम होता है ज़िले की शांति और व्यवस्था और लोगों की जान-माल की रक्षा करना। उसकी सहायता के लिए एक शहर कोतवाल होता है, अनेक थानेदार

और बहुत से सिपाही। शहर की पुलिस दो तरह की होती है—(१) साधारण पुलिस और (२) खुफ़िया पुलिस। खुफ़िया पुलिस के सिपाही छिपे छिपे अपराधियों का पता लगाते हैं।

(स) जेलर—प्रत्येक ज़िले में एक जेल होता है। वहाँ पर अपराधी रखे जाते हैं। जेल का प्रबंध जेलर के अधीन होता है। जेल में वे ही अपराधी रखे जाते हैं जिन्हें किसी न्यायालय द्वारा कारावास का दंड मिला हो। क़ैदियों के स्वास्थ्य आदि की ज़िम्मेदारी जेलर पर होती है, और कलक्टर पर भी। जेल में क़ैदियों को योग्यतानुसार काम करना पड़ता है। कभी कभी दंड देने के लिए क़ैदियों से कठोर या ऐसा काम लिया जाता है जिसका उन्हें अभ्यास न हो। जेलों में रखने का उद्देश्य यह है कि अपराधी का सुधार हो जाय। भारतीय जेलों की अवस्था अभी तक इस प्रकार की नहीं है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक ज़िले में एक या अधिक डिप्टी कलक्टर होते हैं, जिनके अधीन ज़िले का एक सब-डिवीज़न होता है। प्रत्येक ज़िला कुछ तहसीलों में विभक्त होता है। विभिन्न ज़िलों में तहसीलों की संख्या अलग अलग है। तहसील के अफ़सर को तहसीलदार कहते हैं। ये अपनी अपनी तहसीलों की मालगुज़ारी वसूल करके उसे खज़ाने में भेजते हैं। देहातों की स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं का निरीक्षण भी ये ही करते हैं।

स्थानीय स्वराज्य—यदि ज़िलों का सारा काम कलक्टर और उसके सहकारियों को ही करना पड़े, तो शायद सारा काम न हो

सके। अतएव प्रत्येक ज़िले में स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ स्थापित की गयी हैं। उनका वर्णन हम अगले अध्याय में करेंगे।

अभ्यास

१—कलक्टर के अधिकारों को समझाकर लिखिये।

२—निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये—

कमिश्नर, सिविल सर्जन, जेलर, तहसीलदार और डिप्टी कलक्टर।

उन्नीसवाँ अध्याय

स्थानीय स्वराज्य

प्राक्कथन—स्थानीय स्वराज्य की आवश्यकता—भारतवर्ष में स्थानीय स्वराज्य का विकास—म्युनिसिपिल्टियाँ—म्युनिसिपल बोर्ड—उम्मेदवारों की योग्यताएँ—वोटरों की योग्यताएँ—वोटर होने में रुकावटें—म्युनिसिपल निर्वाचन—म्युनिसिपल कार्य-प्रणाली—म्युनिसिपिल्टियों के अधिकार और उनकी आमदनी—म्युनिसिपिल्टियों के काम और उनका ख़र्च—प्रांतीय सरकार और म्युनिसिपिल्टियों का संबंध—म्युनिसिपल शासन की अवस्था—कॉरपोरेशन—ज़िला बोर्ड—ज़िला बोर्ड का संगठन—निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यताएँ—ज़िला बोर्ड के काम—ग्राम पंचायतें—स्थानीय स्वराज्य के प्रति हमारा कर्तव्य।

प्राक्कथन—स्थानीय स्वराज्य का अर्थ है किसी स्थान के नागरिकों के वे अधिकार जिनके कारण वे अपने नगर, ज़िला अथवा गाँव की कुछ विशेष बातों का प्रबंध स्वयं ही करते हैं। इन अधिकारों पर अमल करने के लिए म्युनिसिपिल्टियाँ, ज़िला बोर्ड, ग्राम पंचायतें, इंप्रूवमेंट ट्रस्ट, पोर्ट ट्रस्ट आदि संस्थाएँ स्थापित की गयी हैं। नागरिक के जीवन में इन संस्थाओं का स्थान बड़े महत्व का है। केंद्रीय या प्रांतीय सरकारों से उसका संपर्क बरस में एक या दो बार होता है। वह प्रत्यक्ष रूप से यह नहीं जानता कि उनकी नीति का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। परंतु स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं से उसका नित्यप्रति का संबंध है, और

उनकी नीति का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसे भी वह प्रत्यक्ष रूप से देखता और समझता है। यही कारण है कि युरोप और अमेरिका के निवासी स्थानीय स्वराज्य में बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। स्थानीय स्वराज्य ने भी उनके जीवन को पूर्णतया बदल दिया है। लेकिन भारतवर्ष में अभी ऐसी परिस्थिति नहीं है। भारतीय स्थानीय स्वराज्य अमेरिका और युरुप जैसा उन्नतिशील हो, इसमें अभी कुछ देर है।

स्थानीय स्वराज्य की आवश्यकता—स्थानीय स्वराज्य की स्थापना के तीन मुख्य कारण हैं—

(१) पहला कारण है केंद्रीय अथवा प्रांतीय सरकारों का काम घटाना। मनुष्य का जीवन दिन पर दिन अधिकाधिक जटिल होता जाता है और उसके साथ ही राज्य का काम भी बढ़ता जाता है। बीसवीं शताब्दी में राज्य को अनेक ऐसे काम करने पड़ रहे हैं, जिनको उन्नीसवीं शताब्दी के लोग ध्यान में भी न ला सकते थे। केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के इस बढ़ते हुए काम को घटाने के लिए स्थानीय स्वराज्य अत्यंत आवश्यक है।

(२) जनता को व्यावहारिक राजनीति की शिक्षा देना स्थानीय स्वराज्य की स्थापना का दूसरा कारण है। आजकल समस्त संसार में लोकतंत्र स्थापित हो रहे हैं। उनकी सफलता जनता की व्यावहारिक राजनीति की कुशलता पर निर्भर है। स्थानीय स्वराज्य के कारण नागरिकों को वह राजनीतिक शिक्षा मिलती है, जिसके कारण वे राष्ट्रीय और प्रांतीय शासन में अपना काम योग्यतापूर्वक

कर सकते हैं। जिस प्रकार कुटुंब नागरिक जीवन की सबसे पहली पाठशाला है उसी प्रकार स्थानीय स्वराज्य लोकतंत्र की सबसे पहली पाठशाला है। नागरिकों की स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ लोकतंत्र की सफलता की मूल हैं और उस देश में लोकतंत्र साधारणतः असफल होता है जहाँ स्थानीय स्वराज्य के रूप में उसका बीजारोपण नहीं किया जाता।

(३) प्रत्येक स्थान की विशेष समस्याओं का होना स्थानीय स्वराज्य की स्थापना का तीसरा कारण है। विभिन्न स्थानों की भिन्न भिन्न समस्याएँ होती हैं। तीर्थस्थानों की समस्याओं में और व्यापारिक नगरों की समस्याओं में भिन्नता होती है। औद्योगिक नगरों की समस्याएँ प्राचीन ऐतिहासिक नगरों की समस्याओं की सी नहीं होतीं। बंदरगाहों और भीतरी नगरों की समस्याएँ भी एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इन समस्याओं का ज्ञान जितना इन नगरों के निवासियों को होता है उतना बाहरवालों को नहीं। वे ही इनको भली भाँति जानते और संतोषपूर्वक कम मूल्य में हल कर सकते हैं। अतएव प्रत्येक नगर की विशेष समस्याओं को योग्यतापूर्वक कम दामों में सुलझाने के लिए भी स्थानीय स्वराज्य का होना बहुत ज़रूरी है।

भारतवर्ष में स्थानीय स्वराज्य का विकास—कुछ लोगों का कहना है कि भारतवर्ष में स्थानीय स्वराज्य की स्थापना ब्रिटिश शासन-काल से ही आरंभ हुई है। यह बात ठीक नहीं। लगभग २३०० बरस पूर्व चंद्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में भारत में स्थानीय

स्वराज्य उन्नत अवस्था में था। पाटलिपुत्र के विषय में मेगस्थनीज़ ने इस प्रकार लिखा है—'राजधानी के प्रबंध के लिए ३० सदस्यों की एक सभा है जो ६ समान कमेटियों में विभक्त होकर नगर का सारा काम-काज देखती है। एक कमेटी शिल्प-कला का प्रबंध करती है; दूसरी विदेशियों की देखभाल करती है; तीसरी जन्म-मरण की गणना करती है; चौथी व्यापार-संबंधी बातों को देखती है; पाँचवी देश की बनी वस्तुओं के क्रय का प्रबंध करती है और छठीं बिकी वस्तुओं का कर वसूल करती है। ग्राम-प्रबंध भी सुव्यवस्थित है।' मध्यकाल में स्थानीय स्वराज्य की, विशेषकर ग्राम-पंचायतों की, यही अवस्था रही। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में भारतवर्ष के प्राचीन स्थानीय स्वराज्य का अंत हुआ। उत्तरदायित्व-रहित अधिकारों के कारण कंपनी ने भारतवर्ष के उद्योग-धंधों को ही नहीं, वरन् उन ग्राम-पंचायतों को भी समाप्त किया जो अनेक शताब्दियों से चली आ रही थीं और जिनमें जनता को व्यावहारिक राजनीति की शिक्षा मिलती थी। अतएव भारत में स्थानीय स्वराज्य के लोप होने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व कंपनी की केंद्रीकरण की नीति पर ही है।

केंद्रीकरण के कुपरिणाम शीघ्र ही प्रगट होने लगे और सरकार को अकेंद्रीकरण का सहारा लेना पड़ा। कलकत्ता, बंबई और मद्रास में सत्रहवीं शताब्दी से ही स्थानीय स्वराज्य स्थापित होने की चर्चा हो रही थी और कुछ सफल प्रयत्न भी किये गये थे। सन् १८४२ के बंगाल के दसवें एक्ट के अनुसार अन्य नगरों में

भी स्थानीय स्वराज्य स्थापित करने की व्यवस्था की गयी। परिणाम-स्वरूप कुछ शहरों में म्युनिसिपिल्टियाँ बनीं; परंतु प्रत्यक्ष करों (Direct Taxes) के कारण वे असफल सिद्ध हुईं। सन् १८५० में पुराने एक्ट को रद् करने का एक नया एक्ट बनाया गया। उसके अनुसार म्युनिसिपिल्टियों को चुंगी आदि अप्रत्यक्ष कर लगाने का अधिकार मिला। इस एक्ट के कारण उत्तरी पश्चिमी प्रांत (आजकल संयुक्त प्रांत) और बंबई प्रांत में अनेक नयी म्युनिसिपिल्टियाँ बनीं।

सन् १८६३ में सेना तथा स्वास्थ्य संबंधी शाही कमीशन की सिफ़ारिशों के अनुसार म्युनिसिपिल्टियों के स्वास्थ्य विषयी अधिकार बढ़ाये गये। सन् १८७० में लॉर्ड मेयो ने आर्थिक अकेंद्रीकरण की नीति के कारण स्थानीय स्वराज्य के बढ़ाने पर भी ज़ोर दिया। अतएव सभी प्रांतों में म्युनिसिपिल्टियों के अधि-कार बढ़े। उनके सदस्यों का चुनाव होने लगा और उनकी संख्या एवं उपयोगिता बढ़ी। सन् १८८२ में लॉर्ड रिपन ने स्थानीय स्वराज्य के बढ़ाने पर और भी ज़ोर दिया। उनके विचार में स्थानीय स्वराज्य की स्थापना केवल शासन में सुभीते के ही लिए आवश्यक नहीं थी, वरन् जनता को व्यावहारिक राजनीति की शिक्षा देने के लिए भी ज़रूरी थी। इसलिए उन्होंने निर्वाचित सदस्यों के आधिक्य पर ज़ोर दिया और यह स्पष्ट किया कि सरकारी निरीक्षण बाहर से होना चाहिये, भीतर से नहीं। सन् १९१८ में भारत-मंत्री और गवर्नर जनरल ने स्थानीय स्वराज्य-संबंधी एक नया प्रस्ताव

प्रकाशित किया। उसमें निर्वाचित सदस्यों और निर्वाचकों की संख्या बढ़ाने, म्युनिसिपिल्टियों में ग़ैर-सरकारी सभापतियों के होने, उनके आर्थिक अधिकारों के बढ़ाने, स्थानीय स्वराज्य के नये विभाग के स्थापित करने और ग्राम-पंचायतों के स्थापित करने पर ज़ोर दिया गया था। सन् १९१९ में भारतीय शासन में सुधार किये गये। अब स्थानीय स्वराज्य हस्तांतरित विषय हो गया और उसका शासन मंत्रियों के द्वारा होने लगा। आज भी यही दशा है।

म्युनिसिपिल्टियाँ—बड़े बड़े नगरों या शहरों की स्थानीय स्वराज्य की संस्था को म्युनिसिपिल्टी कहते हैं। प्रांतीय सरकार को अधिकार है कि वह अपने किसी प्रदेश को म्युनिसिपिल्टी घोषित कर दे, किसी म्युनिसिपिल्टी को शहर घोषित कर दे या किसी म्युनिसिपिल्टी के क्षेत्रफल और सीमा को घटा बढ़ा दे। संयुक्त प्रांत में इस समय लगभग ८५ म्युनिसिपिल्टियाँ हैं।

म्युनिसिपल बोर्ड—प्रत्येक म्युनिसिपिल्टी के शासन की देखभाल के लिए एक कमेटी होती है। उसको म्युनिसिपल बोर्ड कहते हैं। यह बोर्ड जनता के द्वारा सांप्रदायिक आधार पर चुना जाता है। चुनाव के लिए प्रत्येक म्युनिसिपल नगर कई हल्कों (wards) में बाँट दिया जाता है और उनमें से प्रत्येक से जन-संख्या के आधार पर, एक या अधिक प्रतिनिधि चुने जाते हैं। कुछ म्युनिसिपिल्टियों में सरकार के मनोनीत कुछ सदस्य होते हैं और कुछ में विशेष जन-समुदायों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया

जाता है। बोर्ड का कार्यकाल साधारणतः तीन वर्ष होता है लेकिन प्रांतीय सरकार इस काल को बढ़ा सकती है।

उम्मेदवारों की योग्यताएँ—संयुक्त प्रांत में प्रत्येक म्युनिसिपल वोटर (मतदाता) जो अँगरेज़ी, हिंदी या उर्दू पढ़ लेता हो, जो म्युनिस्पिल नौकर न हो, जो म्युनिसिपिल्टी के किसी ठेके का हिस्सेदार न हो, जो वैतनिक मैजिस्ट्रेट या पुलिस का अफ़सर न हो, म्युनिसिपल बोर्ड का सदस्य चुना जा सकता है। म्युनिसिपल निर्वाचन-संबंधी अपराध के दोषी ठहराये गये व्यक्ति पाँच साल तक उम्मेदवार नहीं हो सकते। वे सरकारी नौकर जो नौकरी से बरख़ास्त कर दिये गये हों और उसके लिए अयोग्य ठहराये गये हों और वे वकील जो वकालत करने के अधिकार से वंचित कर दिये गये हों, प्रांतीय सरकार की अनुमति के बिना उम्मेदवार नहीं हो सकते।

वोटरों की योग्यताएँ—वोटर होने के मूल सिद्धांत सब प्रांतों में प्रायः समान हैं, पर भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भिन्न परिस्थितियों के कारण कुछ अंतर अवश्य हो गये हैं। संयुक्त प्रांत में वे सब लोग वोट दे सकते हैं जिनका नाम वोटरों की सूची में लिखा हो। वोटरों की सूची में निम्नलिखित योग्यताओं के व्यक्ति अपना नाम लिखा सकते हैं —

(१) म्युनिसिपिल्टी को एक निश्चित या उससे अधिक कर देना।

(२) वोटरों की सूची तैयार होने के पहले एक बरस तक

म्युनिसिपल सीमा के अंदर रहना, यदि निम्नलिखित शर्तों में से एक या अधिक पूरी होती हों—

(क) किसी विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट होना;

(ख) भारत-सरकार को आय-कर देना;

(ग) म्युनिसिपल सीमा के अंदर एक निर्धारित किराये के मकान का मालिक होना;

(घ) म्युनिसिपल सीमा के अंदर ऐसे मकान में रहना जिसका वार्षिक किराया एक नियत रक़म हो;

(ङ) ऐसी ज़मीन का मालिक होना जिसकी मालगुज़ारी एक निश्चित रक़म या उससे अधिक हो;

(च) ऐसी माफ़ी ज़मीन का मालिक होना जिसकी मालगुज़ारी एक निर्धारित रक़म हो;

(छ) ऐसी ज़मीन का काश्तकार होना जिसका वार्षिक लगान एक निश्चित रक़म हो; या

(ज) जिनकी आमदनी एक निश्चित रक़म हो।

वोट देने के अनधिकारी—वे मनुष्य जो ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं, जिनकी आयु २१ बरस से कम है, जो उपयुक्त न्यायालय द्वारा पागल ठहराये गये हैं या जो ऐसे दिवालिये हैं जिनका सारा भुगतान नहीं हो पाया है, म्युनिसिपल चुनाव के निर्वाचक नहीं हो सकते।

भारतवर्ष के नये शासन-विधान के कारण, प्रांतीय कौंसिल के निर्वाचकों की संख्या बढ़ायी गयी है। चूँकि म्युनिसिपल निर्वाचकों की योग्यताओं को प्रांतीय कौंसिल के निर्वाचकों की योग्यताओं से

कम होना चाहिये, इस लिए थोड़े दिनों में ही म्युनिसिपल निर्वाचकों की योग्यताएँ कम की जाएँगी और निर्वाचकों की संख्या बढ़ेगी।

म्युनिसिपल निर्वाचन—साधारणतः प्रति तीसरे वर्ष म्युनिसिपल बोर्ड का नया चुनाव होता है। उन दिनों शहर में बड़ी हलचल मच जाती है। नियत दिन तक उम्मेदवारों के निर्वाचन के आवेदनपत्र (Nomination papers) पेश किये जाते हैं। निश्चित दिन उनकी जाँच होती है, और जो आवेदनपत्र नियमानुकूल नहीं होते वे रद कर दिये जाते हैं। इसी बीच भिन्न भिन्न उम्मेदवार और उनके सहायक मतदाताओं के पास वोट लेने के लिए जाते हैं। चुनाव के दिन शहर में बड़ी धूम होती है। प्रत्येक उम्मेदवार के इक्के, तांगे, गाड़ी, मोटर आदि वोटरों को उस स्थान पर ले जाने के लिए घूमा करते हैं जहाँ वोट पड़ते हैं। वोटर अपना मत देकर अपने घर लौट आते हैं। उस दिन निश्चित समय के पश्चात् एक भी वोट नहीं पड़ सकता। कुछ समय बाद वोट गिने जाते हैं और जिस उम्मेदवार के ज्यादा वोट आते हैं वह उस क्षेत्र का प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाता है।

चुनाव में कुछ लोग ऐसे कामों को करते हैं, जिनके कारण वोटर स्वतंत्रतापूर्वक अपना वोट नहीं दे सकते। कुछ लोग वोटरों को धमकाते हैं, घूस देते हैं, रुपया देकर वोट मोल लेते हैं, दावत आदि देकर उन पर अपना प्रभाव जमाते हैं या जाली वोट डालते हैं। ऐसा करना नियम के विरुद्ध है। किसी वोटर अथवा उम्मेदवार को अधिकार है कि ऐसी बातें कलक्टर के सामने पेश करे। इस

प्रकार के प्रार्थनापत्र पहुँचने पर कमिश्नर यह निर्णय करता है वि निर्वाचन नियमों के अनुकूल था या नहीं। तब आवश्यकता हुई ते निर्णयानुसार दूसरा निर्वाचन किया जाता है, या दूसरा उम्मेदवा उस क्षेत्र का प्रतिनिधि घोषित किया जाता है।

म्युनिसिपल कार्य-प्रणाली—चुनाव के बाद निश्चित दि म्युनिसिपल बोर्ड की प्रथम बैठक होती है। इसमें सभापति (Chairman) का चुनाव होता है। सभापति एक अवैतनि पदाधिकारी होता है। उसको म्युनिसिपल शासन संबंधी अनेक अधिकार होते हैं। इसके पश्चात् म्युनिसिपल कमेटियों का चुना होता है। ये म्युनिसिपल शासन के विविध कामों को देखती हैं बोर्ड की सहायता के लिए कुछ स्थायी वैतनिक कर्मचारी होते हैं जैसे इक्ज़ीक्यूटिव अफ़सर, इंजीनियर, मंत्री, हेल्थ अफ़सर तथ अनेक क्लर्क आदि। बोर्ड के सभापति, कमेटियाँ, स्थायी अफ़सर आदि सब मिलकर म्युनिसिपल बोर्ड के शासन की देख-रेख करते हैं।

म्युनिसिपिल्टियों के अधिकार और आमदनी—प्रांतीय एक्ट के अंतर्गत् म्युनिसिपिल्टियाँ जनता की भलाई के सारे काम कर सकती हैं। जनता के स्वास्थ्य की देख-भाल करना, उनकी शिक्षा का प्रबंध करना, सर्वसाधारण के सुभीते की चीज़ों की व्यवस्था करना, जीवन और संपत्ति के सुरक्षित करने का प्रबंध करना आदि म्युनिसिपिल्टियों के काम हैं। इन कामों के करने के लिए वे नियम बना और कर लगा सकती हैं। म्युनिसिपल आमदनी के निम्नलिखित पाँच मुख्य साधन हैं—

(१) म्युनिसिपल टैक्स; जैसे चुंगी, मकान और ज़मीन का टैक्स, जानवरों का टैक्स, पानी का टैक्स आदि;

(२) म्युनिसिपल फ़ीस; जैसे स्कूल फ़ीस आदि;

(३) म्युनिसिपल व्यापार से लाभ या म्युनिसिपल इमारतों का किराया। कुछ म्युनिसिपिल्टियाँ अपने बाज़ार बनवाती हैं और उसकी दूकानें किराये पर देती हैं। कुछ अपनी बिजली की कंपनियाँ खोलती हैं और उनसे कुछ आमदनी करती हैं; और

(४) गवर्मेंट की सहायता। प्रत्येक म्युनिसिपिल्टी को आवश्यकतानुसार प्रांतीय सरकार आर्थिक सहायता देती है। इस सहायता का कारण यह है कि म्युनिसिपिल्टियाँ आरंभिक शिक्षा आदि ऐसे काम करती हैं, जो वास्तव में सरकार के काम हैं। अतएव सरकार को उनकी सहायता करना आवश्यक है।

(५) यदि इस आमदनी से काम न चले तो म्युनिसिपिल्टियाँ ऐसे स्थायी कामों के लिए, जिनकी लागत बहुत ज़्यादा है, ऋण ले सकती हैं। म्युनिसिपिल्टियों के कुछ ऋण ऐसे होते हैं जिनसे किये गये कामों की आमदनी ब्याज से अधिक होती है, परंतु कुछ ऋण ऐसे होते हैं. जिनका ब्याज भी म्युनिसिपिल्टी की सालाना आमदनी से देना पड़ता है। पानी के कल लगाने का ऋण पहले वर्ग का है और गंदा नाला बनवाने का ऋण दूसरे वर्ग का।

म्युनिसिपिल्टी के काम और उनका ख़र्च—म्युनिसिपिल्टी के कामों को साधारणतः हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) सार्वजनिक स्वास्थ्य के काम—अपने नागरिकों के स्वास्थ्य

की रक्षा करना म्युनिसिपिल्टियों का पहला काम है। शहरों या नगरों के मकान बड़े घने होते हैं। उनमें पर्याप्त धूप और हवा नहीं पहुँच पाती, और संक्रामक बीमारियों के फैलने की आशंका रहा करती है। अतएव म्युनिसिपिल्टियों का कर्तव्य है कि पहले तो बीमारियों को निकट ही न आने दें और यदि वे आ जा जायँ तो चिकित्सा का समुचित प्रबंध करें। संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपिल्टियाँ इन कामों को करती हैं। वे शहरों की सफ़ाई और स्वच्छ पानी का प्रबंध करती हैं; भोजन या जलपान की सामग्री का निरीक्षण करती हैं; पार्क बनवाती हैं; प्लेग और चेचक के रोकने की व्यवस्था करती हैं; जनता में स्वास्थ्य-संबंधी शिक्षा का प्रचार करती हैं; अस्पताल और औषधालय खोलती हैं और इस प्रकार की सर्वसाधारण द्वारा खोली गयी संस्थाओं की सहायता करती हैं।

संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपल आमदनी का लगभग ५० प्रतिशत् स्वास्थ्य-संबंधी कामों में ख़र्च किया जाता है। फिर भी जनता का स्वास्थ्य संतोषप्रद नहीं रहता। इसके कुछ कारण ये हैं—जनता की ग़रीबी और स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता; लोगों में स्वास्थ्यप्रद आदतों का अभाव, बालविवाह आदि कुप्रथाएँ; जन्म के समय माता और बच्चों को गंदे स्थान में रखना और म्युनिसिपल कर्मचारियों की असावधानी तथा घूसख़ोरी की आदत।

(२) सार्वजनिक रक्षा के काम—अपने नागरिकों की जान और माल की रक्षा करना म्युनिसिपिल्टियों का दूसरा काम है।

इसके लिए भी संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपिटियाँ कुछ काम करती हैं। वे सड़कों पर रोशनी का प्रबंध करती हैं; कमज़ोर या ख़तरनाक मकानों को गिराती हैं और आग बुझानेवाले इंजन को रखती हैं। परंतु म्युनिसिपिल्टियों के ये काम भी संतोषप्रद नहीं हैं। म्युनिसिपिल्टियाँ उन लोगों की सहायता नहीं करतीं जिनका नुक़सान हो जाता है। म्युनिसिपिल्टियों के पास अपनी पुलिस भी नहीं होती।

(३) सार्वजनिक सुभीते के काम—अपने नागरिकों के सुभीते के साधन प्रस्तुत करना म्युनिसिपिल्टियों का तीसरा काम है। इसके लिए संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपिल्टियाँ कुछ काम करती हैं। वे सड़कें बनवाती हैं; सड़कों के किनारे पैदल चलनेवाले लोगों के लिए रास्ते बनवाती हैं; बाज़ारों का प्रबंध करती हैं; इक्के, ताँगों और साइकिलों पर नंबर डालती हैं; जगह जगह सड़कों के नाम के साइनबोर्ड लगवाती हैं और सार्वजनिक सभाओं के लिए टाउनहालों का प्रबंध करती हैं। लेकिन म्युनिसिपिल्टियों के ये काम भी संतोषप्रद नहीं हैं। पश्चिमी देशों से लौटे हुए सारे भारतीय यही कहते हैं कि उन देशों के सामने भारतवर्ष में म्युनिसिपल सार्वजनिक सुभीते के काम नहीं के बराबर हैं। अधिकांश नगरों की सड़कें पतली, गंदी और टूटी-फूटी हैं; इक्के तथा ताँगे गंदे और ख़तरनाक हैं; खुले मैदानों और पार्कों का अभाव है और बहुत जगहों में तो सार्वजनिक सभा आदि करने के लिए हाल तक का प्रबंध नहीं है।

(४) सार्वजनिक शिक्षा का प्रबंध—सर्वसाधारण की शिक्षा का प्रबंध करना म्युनिसिपिल्टियों का चौथा काम है। संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपिल्टियाँ इस कारण आरंभिक शिक्षा के लिए अनेक स्कूल खोलती हैं; बालक बालिकाओं की शिक्षा का प्रबंध करती हैं; अँगरेज़ी के हाई स्कूल खोलती हैं और सार्वजनिक स्कूलों, पुस्तकालयों, वस्तु-संग्रहालयों आदि की आर्थिक सहायता करती हैं। भारतीय म्युनिसिपिल्टियों का यह काम भी संतोषप्रद नहीं है। यह तो इसी से ही विदित है कि भारतीयों में पढ़े लिखे लोगों की संख्या दस प्रतिशत् से अधिक नहीं है।

म्युनिसिपिल्टियों का ख़र्च—अपनी आमदनी का अधिकांश भारतीय म्युनिसिपिल्टियाँ उपर्युक्त कामों में ख़र्च करती हैं। साधारणतः संयुक्त प्रांत की म्युनिसिपिल्टियाँ अपनी आमदनी का लगभग ५५ प्रतिशत् स्वास्थ्य सुधार और सार्वजनिक सुभीते के कामों में, ६ प्रतिशत् सार्वजनिक रक्षा के कामों में और १० प्रतिशत् सार्वजनिक शिक्षा में ख़र्च करती हैं। इनके अतिरिक्त म्युनिसिपल आमदनी का लगभग १० प्रतिशत् ऋण का ब्याज चुकाने में, एवं १० प्रतिशत् शासन के संबंध में और शेष अन्य प्रकार के विविध म्युनिसिपल कामों में ख़र्च होता है।

प्रांतीय सरकार और म्युनिसिपिल्टियों का संबंध— भारतीय म्युनिसिपिल्टियाँ सर्वथा स्वतंत्र नहीं हैं। वे प्रांतीय सरकार के निरीक्षण में और उसके अधीन अपने काम करती हैं। प्रांतीय सरकार अपने किसी प्रदेश को म्युनिसिपिल्टी घोषित कर

सकती है और उसके क्षेत्रफल और सीमा में परिवर्तन कर सकती है। ठीक ठीक काम न होने पर वह म्युनिसिपिल्टी को तोड़ सकती है या उसके शासन का स्वयं उचित प्रबंध कर सकती है। म्युनिसिपिल्टियों के आवश्यक कामों का खर्च प्रांतीय सरकार के निरीक्षण में होता है। प्रांतीय सरकार म्युनिसिपिल्टी से कोई रिपोर्ट माँग सकती है और उसे किसी काम के करने का आदेश दे सकती है। प्रति वर्ष प्रत्येक म्युनिसिपिल्टी को अपने गत वर्ष की आय, व्यय और कामों का विवरण प्रांतीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रांतीय सरकार की ओर से साधारणतः छोटे शहरों में कलक्टर और बड़े शहरों के कमिश्नर म्युनिसिपल शासन की देखरेख करते हैं।

म्युनिसिपल शासन की अवस्था—भारतीय म्युनिसिपल शासन उस उन्नतिशील अवस्था में नहीं, जिसमें होना चाहिये। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) म्युनिसिपिल्टियों के अधिकारों का अपर्याप्त होना—भारतीय म्युनिसिपिल्टियों के अधिकार परिमित हैं। कलक्टर और कमिश्नर की स्वीकृति छोटी छोटी बातों के लिए भी आवश्यक होती है। इस कारण भारतीय म्युनिसिपिल्टियाँ सर्वसाधारण के वे सब काम करने की हिम्मत नहीं कर सकतीं जो जर्मनी और अमेरिका की म्युनिसिपिल्टियाँ करती हैं।

(२) म्युनिसिपल शासन में योग्य पुरुषों का अभाव—भारतीय म्युनिसिपल शासन में योग्य पुरुषों का अभाव है। कुछ योग्य पुरुष

प्रांतीय कौंसिलों में चले जाते हैं, कुछ केंद्रीय कौंसिलों में और कुछ कांग्रेस आदि सार्वजनिक संस्थाओं की देख-रेख में लगे रहते हैं। जो कुछ बचते हैं, उनमें से भी अधिकांश म्युनिसिपल मेंबरी को फजीहत की बात समझते हैं। अतएव म्युनिसिपल शासन साधारणतः द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मनुष्यों के अधीन होता है। इस कारण वह अधिक उन्नतिशील नहीं हो सकता।

(३) नागरिक भाव की कमी—नागरिक भाव का अभाव म्युनिसिपल शासन के उन्नतिशील न होने का तीसरा कारण है। शिक्षा की कमी और संसार को असार मानने के कारण बहुतेरे भारतवासी वोट आदि के झंझट से बचने की कोशिश करते हैं। वे अपने अधिकारों के लिए नहीं लड़ते और स्वास्थ्य-संबंधी विषयों में म्युनिसिपल कर्मचारियों के साथ सहयोग नहीं करते। साधारणतः म्युनिसिपल सदस्य भी, चुने जाने के बाद अपने निर्वाचन क्षेत्र और उसके वोटरों को भूल जाते हैं। सदस्यों की सहानुभूति से जनता ऐसे अनेक कामों के लिए तैयार हो सकती है जिनसे वह अन्यथा हिचकिचाती है।

(४) म्युनिसिपल कर्मचारियों का व्यवहार—म्युनिसिपल कर्मचारियों का व्यवहार भी संतोषप्रद नहीं है। कम वेतन पाने के कारण वे प्रायः ग़रीबों को सताते और उनसे घूस आदि लेने लगते हैं। ग़रीब लोग झंझटों से बचने के लिए एक-दो रुपये देकर अपना पिंड छुड़ाते हैं। ऐसी परिस्थिति में म्युनिसिपल शासन के उन्नतिशील होने की आशा नहीं की जा सकती।

कॉरपोरेशन—कलकत्ता, बंबई और मद्रास की म्युनिसिपल संस्थाओं को कॉरपोरेशन कहते हैं। अन्य म्युनिसिपिल्टियों की अपेक्षा ये कॉरपोरेशन अधिक पुराने हैं। मद्रास कॉरपोरेशन की बातचीत सन् १६८७ से ही आरंभ हो गयी थी। आजकल प्रत्येक कॉरपोरेशन अपने अपने प्रांत की व्यवस्थापक सभा के द्वारा स्वीकृत एक्टों के अनुसार संगठित हैं। उनके सदस्यों की संख्या अलग अलग है। बंबई कॉरपोरेशन के १०६ सदस्य हैं और मद्रास के ६१। प्रत्येक कॉरपोरेशन के अधिकांश सदस्य जनता के चुने हुए होते हैं, और थोड़े से मनोनीत भी। प्रत्येक कॉरपोरेशन में उद्योग-धंधों को भी कुछ प्रतिनिधि के भेजने का अधिकार दिया गया है। नगर के शासन में इन कॉरपोरेशनों के काफ़ी अधिकार हैं। कलकत्ता कॉरपोरेशन की आमदनी दो करोड़ और बंबई कॉरपोरेशन की तीन करोड़ रुपये से अधिक है। इन कॉरपोरेशनों के सभापति को मेयर (Mayor) कहते हैं। कलकत्ता और बंबई के मेयर कॉरपोरेशन के द्वारा चुने जाते हैं, और मद्रास का प्रांतीय सरकार द्वारा मनोनीत होता है। बंबई के मेयर संस्थापित प्रथानुसार क्रमशः हिंदू, मुसल्मान, युरोपियन और पारसी जातियों के होते हैं।

ज़िला बोर्ड—म्युनिसिपिल्टियों और कॉरपोरेशनों का संबंध शहरी जनसंख्या से होता है। परंतु भारतवर्ष के अधिकांश निवासी गाँवों में रहते हैं। शहरों की आबादी क्रमशः बढ़ अवश्य रही है पर वृद्धि की दर बहुत कम है। अतएव भारतीय नागरिकों को व्यावहारिक राजनीति में कुशल बनाने के लिए यह आवश्यक है

कि देहाती जनसंख्या से संबंध रखनेवाली स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ स्थापित की जायँ और उन्नतिशील बनायी जायँ। संयुक्त प्रांत में इस प्रकार की दो संस्थाएँ आजकल प्रचलित हैं। एक का नाम है ज़िला बोर्ड और दूसरी का ग्राम पंचायत।

ज़िला बोर्ड का संगठन—संयुक्त प्रांत के प्रत्येक ज़िले में एक ज़िला बोर्ड है। उसके काम-काज देखने के लिए एक बोर्ड होता है। यह सांप्रदायिक आधार पर चुना जाता है। मुसल्मानों के प्रतिनिधित्व की निम्नलिखित व्यवस्था की गयी है—

प्रतिशत् जनसंख्या	प्रतिनिधि
१ से कम	५ प्रतिशत्
१ से अधिक पर ५ से कम	१५ प्रतिशत्
५ से अधिक पर १५ से कम	२५ प्रतिशत्
१५ से अधिक पर ३० से कम	३० प्रतिशत्
३० से अधिक	जनसंख्या के अनुपातानुसार

निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त, प्रत्येक बोर्ड में कुछ मनोनीत सदस्य भी होते हैं। बोर्ड के सभापति को उसके सदस्य स्वयं चुनते हैं। म्युनिसिपिल्टियों की भाँति ज़िला बोर्डों का काम भी कमेटियों में विभक्त कर दिया जाता है, और ज़िला बोर्ड साधारणतः उन्हीं के परामर्श के अनुसार अपने क्षेत्र का शासन करता है।

निर्वाचकों और सदस्यों की योग्यताएँ—ज़िला बोर्ड के क्षेत्र का प्रत्येक निवासी निर्वाचक हो सकता है, यदि उसका नाम वोटरों की सूची में लिखा हो। प्रत्येक मनुष्य, जो ब्रिटिश प्रजा हो, जो कम से कम २१ बरस का हो, और ज़िला बोर्ड की सीमा के अंदर रहता हो, अपना नाम वोटरों की सूची में लिखा सकता है, यदि उसमें निम्नलिखित योग्यताओं में से एक या अधिक हों—

(१) ऐसी भूमि का मालिक जिसकी मालगुज़ारी २५ रुपये सालाना हो।

(२) ऐसा असामी जो ५० रुपये वार्षिक लगान देता हो।

(३) वह मनुष्य जो आय-कर देता हो।

(४) वह मनुष्य जो ज़िला बोर्ड को हैसियत टैक्स देता हो।

(५) वह मनुष्य जो अँगरेज़ी की एंट्रेंस या हिंदी या उर्दू की मिडिल परीक्षा पास हो।

नये शासन-विधान के अनुसार प्रांतीय असेंबली के वोटरों की संख्या बढ़ाने के लिए उनकी योग्यताएँ पहले की अपेक्षा बहुत कम कर दी गयी हैं। परंतु स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के वोटरों की संख्या असेंबली के वोटरों की अपेक्षा कम न होनी चाहिये। इसलिए शीघ्र ज़िला बोर्ड के वोटरों की योग्यताएँ उपर्युक्त योग्यताओं की अपेक्षा बहुत कम हो जायँगी।

वे मनुष्य जो उपयुक्त न्यायालय द्वारा पागल ठहराये गये हों, जो ऐसे दिवालिये हों जिन्होंने अपना भुगतान न किया हो, और जिन्होंने पिछले साल का ज़िला बोर्ड का टैक्स न चुकाया हो, निर्वा-

चक नहीं हो सकते। जिला बोर्ड का प्रत्येक निर्वाचक, उसकी सदस्यता का उम्मेदवार हो सकता है, यदि वह उन अयोग्यताओं से मुक्त हों जिनका उल्लेख म्युनिसिपिल्टियों के उम्मेदवारों के संबंध में किया गया है।

ज़िला बोर्ड के काम—शहरों के लिए जो काम म्युनिसिपिल्टियाँ करती हैं, वे ही काम गाँवों के लिए जिला बोर्ड करते हैं। ग्राम-निवासियों की शिक्षा का प्रबंध करना, उनके स्वास्थ्य-सुधार की व्यवस्था करना, उनके जीवन और धन की रक्षा करना, उनके सुभीते के साधन प्रस्तुत करना आदि जिला बोर्डों के काम हैं। संयुक्त प्रांत के जिला बोर्ड इन सब कामों को करते हैं। किंतु गाँवों की दशा देखते हुए उनका काम संतोषप्रद नहीं है। भारतवर्ष के ग्राम-निवासी अभी तक अंधकार में पड़े हैं। उनमें शिक्षा का अभाव है। उनकी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं कि वे दोनों समय पेट भर भोजन पा सकें। वे रूढ़ियों के गुलाम हैं। उनके खेती करने का ढंग वही है जो बरसों पहले था। जिला बोर्डों और उनके सदस्यों को चाहिये कि वे गाँव के निवासियों की दशा सुधारने का भरसक प्रयत्न करें। ग्रामीण जन-संख्या की अवस्था सुधरने पर ही भारतवर्ष उन्नत अवस्था को प्राप्त कर सकेगा।

ग्राम-पंचायतें—ज़िला बोर्डों के अतिरिक्त, संयुक्त प्रांत में ग्राम-पंचायतों के स्थापित करने की भी व्यवस्था की गयी है। इनका काम होता है छोटे मोटे मामलों का निर्णय करना और गाँव की स्वास्थ्य-संबंधी तथा अन्य सार्वजनिक बातों की देखभाल

करना। ज़िले के कलक्टर पंचों और सरपंचों को नियुक्त करते हैं, और वही उनको निकाल भी सकते हैं। दुराचरण. कर्तव्य-पालन न करने, अथवा किसी अन्य उपयुक्त कारण के लिए कलक्टर किसी पंचायत को भंग तक कर सकते हैं।

ग्राम-पंचायतें २५ रुपये तक के दीवानी मुक़दमों का निर्णय कर सकती हैं। वे मामूली मार-पीट या दस रुपये तक की चोरी या दस रुपये तक के नुक़सान या जान बूझ कर अपमान करनेवाले फौजदारी मुक़दमों का भी फैसला कर सकती हैं। जान बूझ कर जानवरों के पकड़ने और स्वास्थ्य-संबंधी बातों पर ध्यान न देने के कारण जो मुक़दमें होते हैं, उनका निर्णय भी ग्राम-पंचायतें करती हैं। उन्हें फौजदारी के मामलों में दस रुपये, मवेशियों के मामलों में पाँच रुपये और स्वास्थ्य-संबंधी मामलों में एक रुपया तक जुर्माना करने का अधिकार है।

ग्राम-पंचायतें उन मुक़दमों को नहीं कर सकतीं जिनका संबंध सरकारी कर्मचारियों से या ऐसे व्यक्तियों से हो जिनसे अच्छे आचरण के लिए मुचलके लिये गये हों। पंचायतों को कारावास का दंड देने का अधिकार नहीं है।

पंचायतों की आमदनी के तीन मुख्य ज़रिये हैं—(१) मुक़दमा करने की फ़ीस, (२) जुर्माने की रक़म, और (३) सरकारी सहायता। पंचायतें अपनी सारी आमदनी गाँव की शिक्षा और स्वास्थ्य-संबंधी बातों में ख़र्च करती हैं। कभी कभी अपनी आमदनी से, क्षति पहुँचाये गये मनुष्य को, वे कुछ हरजाना भी देती हैं।

ग्राम-पंचायतों के अधिकार बहुत थोड़े हैं। उनके संगठन का ढंग भी दोष-पूर्ण है। आवश्यकता इस बात की है कि गाँववाले पंचायतों की उपयोगिता को समझें और उनके कामों में दिलचस्पी लें। इसके लिए यह ज़रूरी है कि पंचायतों का चुनाव हुआ करे, उनके अधिकार बढ़ाये जायँ, गाँव की शिक्षा उन्हीं के अधीन कर दी जाय और उसके लिए उन्हें यथोचित सरकारी सहायता मिले।

स्थानीय स्वराज्य के प्रति हमारा कर्तव्य—भारतीय स्थानीय स्वराज्य युरुप और अमेरिका के देखते हुए बहुत पीछे है। हमारा कर्तव्य है कि हम उसको उन्नतिशील बनावें। म्युनिसिपिल्टियों और ज़िला बोर्डों के निर्वाचन में बहुत से लोग वोट देने नहीं जाते। यह ठीक नहीं। भारतवर्ष में अभी तक थोड़े ही से मनुष्यों को निर्वाचन का अधिकार मिला है। यदि वे ही इसको बला समझेंगे तो सब मनुष्यों को मताधिकार देकर भारतवर्ष में लोक-तंत्र कैसे स्थापित होगा? अतएव भारतवर्ष के प्रत्येक मताधिकारी का कर्तव्य है कि वह निर्वाचन में वोट देने अवश्य जाय। इसके अतिरिक्त, योग्य मनुष्यों को सदस्य बनने के लिए तैयार रहना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि भारतीय स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के अधिकार बहुत परिमित हैं। तो भी हमें उनका उपयोग करना चाहिये। योग्य पुरुषों को यह कहकर अलग न हो जाना चाहिये कि अमुक संस्थाओं की सदस्यता फजीहत की बात है। सदस्य होने पर उन्हें अपने कर्तव्यों से बिलग भी न होना चाहिये। बहुत से लोग म्युनिसिपिल्टियों या जिला बोर्डों के सदस्य इस

लिए बनते हैं कि उनको कुछ आमदनी हो जाय। ऐसा करना अनुचित है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपने व्यक्तिगत् स्वार्थों की अपेक्षा, नगर की भलाई को उच्चतर समझे।

किसी शहर अथवा गाँव के निवासियों को केवल वोट ही देकर स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं से पीछा न छुड़ाना चाहिये। उन्हें नित्यप्रति के जीवन में इन संस्थाओं से सहयोग करना चाहिये। म्युनिसिपिल्टी चाहे कितनी ही बड़ी और उसके कर्मचारी चाहे कितने ही योग्य क्यों न हों, जनता के नित्यप्रति के सहयोग के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते। यदि हम ही अपने मकान को साफ़ न रखेंगे, अपने मकान का कूड़ा करकट सड़क पर फेकेंगे, बीमार होने पर दवा लेने न जायँगे और म्युनिसिपल कर्मचारियों को घूस देकर अपना काम निकालेंगे तो स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ अपने उद्देश्य की पूर्ति में सर्वथा असफल रहेंगी।

हमारी सरकार को भी चाहिये कि वह स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के अधिकार बढ़ावे, जिससे योग्य व्यक्ति उसकी ओर आकृष्ट हों।

स्थानीय स्वराज्य की सफलता पर भारतवर्ष का भविष्य बहुत कुछ निर्भर है। यहाँ की पायी हुई शिक्षा के आधार पर ही हमारी राष्ट्रीय और प्रांतीय संस्थाएँ सफल अथवा असफल होंगी। अतएव भारतवर्ष के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं से अधिक से अधिक शिक्षा ग्रहण करे और उस शिक्षा के आधार पर अपने आचरण को ऐसा बनावे जिससे भारत-

वर्ष का राष्ट्रीय उत्थान हो, और संसार के अन्य देशों में वह वही स्थान पा सके जो उसका भूतकाल में था।

अभ्यास

१—स्थानीय स्वराज्य की संस्थाओं के स्थापित करने के कौन कौन से मुख्य कारण हैं ?

२—म्युनिसिपिल्टियों के चुनाव में किन किन लोगों को वोट देने का अधिकार दिया गया है ? कौन कौन से लोग वोट देने के अधिकार से वंचित रखे गये है ?

३—म्युनिसिपिल्टियों की आय के कौन कौन से साधन हैं ? वे अपनी आय को कैसे ख़र्च करती हैं ?

४—नागरिकों के स्वास्थ्य-सुधार और शिक्षा के लिए म्युनिसिपिल्टियाँ कौन कौन से काम करती हैं ?

५—ज़िला बोर्डों के संगठन का विवरण लिखिये।

६—ग्राम-पंचायतों के अधिकारों और कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से लिखिये।

७—स्थानीय स्वराज्य के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है? समझाकर लिखिये।
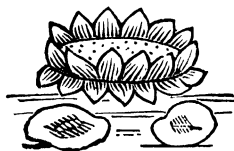
शब्द सूची।

अंतर्राष्ट्रीय–International.
अखिल भारतीय–Imperial, All-India.
अध्यक्ष–President.
अध्यक्षात्मक–Presidential.
अधिकार–Right.
अनागरिक होना–To lose citizenship.
अनुमति–Consent.
अवकाश-ग्रहीत–Retired.
अविभक्त–Joint.
अल्प-संख्यक–Minority.
आंदोलन–Movement.
आदेश-पत्र–Instrument of Instructions.
आय-कर–Income-tax.
आवश्यककार्य–Constituent functions.
आवश्यकता–Need.
इतिहास–History.
उच्च-जन-तंत्र–Aristocracy.
उत्पत्ति–Origin.
उद्देश्य–Object, End.
उपनिवेश-मंत्री–Colonial Secretary.
उप-प्रमुख–Deputy speaker.
उभय-प्रदेश–Excluded areas.
उम्मेदवार–Candidate.

एक़रारनामा–Contract.

एकात्मक–Unitary.

कर्तव्य–Duty.

कर्मचारी–Officer.

क़ानून– Law.

कॉमनसभा–House of Commons.

कार्य-कारिणी-समिति–Executive Committee or Council.

कार्य-विभाजन–Distribution of functions.

कार्य-क्षेत्र–Jurisdiction, Scope.

कार्यालय–Office.

कुटुंब–Family.

कुल–Family.

कृत्रिम नागरिक–Naturalised citizens.

गरमदल–Extremists.

गुप्त समिति–Secret Committee.

गोत्रात्मक–Based on kinship.

छोटी सभा–Lower House.

जन्मसिद्ध अधिकार–Natural right.

जन्मसिद्ध नागरिक–Natural citizen.

जनसंख्या–Population.

जल सेना–Naval forces.

जाति–Caste.

जिला बोर्ड–District Board.

जिला जज या न्यायाधीश–District Judge.

ठीक ठीक क्रम–Right ordering.

दंड-विधान–Penal Code.

दलित जाति–Depressed class.

देश–Country.
देश-प्रेम–Patriotism.
द्वैध शासन-प्रणाली–Diarchy.
न्याय–Justice.
न्यायाधीश–Judge.
नगर–City.
नगर-राज्य–City state.
नभ सेना–Air force.
नरम दल–Moderates.
नरेंद्र-मंडल–Chamber of Princes.
नागरिक–Citizen.
नागरिक भाव–Civic Sense.
नागरिक शास्त्र–Civics.
नाममात्र–Nominal.
नियंत्रण-संघ–Board of Control.
निर्णायक मंडल–Judiciary.
निर्यात-कर–Export duties.
निर्वाचक-संघ–Constituency.
निरंकुश–Autocratic.
निरंकुश शासन–Absolute monarchy.
नौकरियाँ–Services.
परामर्शदाता–Adviser.
परिमित राजतंत्र–Limited monarchy.
परिवार–Family.
परोक्ष निर्वाचन–Indirect election.
पितृ-प्रधान–Patriarchal.
पूंजीपति–Capitalist.

पृथक् प्रदेश–Excluded areas.
प्रजा-तंत्र–Democracy.
प्रत्यक्ष निर्वाचन–Direct election.
प्रत्यक्ष लोकतंत्र–Direct democracy.
प्रतिक्रियात्मक–Reactionary.
प्रतिनिधि–Representative.
प्रतिनिधि लोकतंत्र–Representative democracy.
प्रथा–Convention.
प्रदेशात्मक–Territorial.
प्रधान सेनापति–Commander-in-Chief.
प्रमुख–Speaker.
प्रवेश प्रार्थना-पत्र–Instrument of Accession.
प्रांत–Province.
प्रांतीय स्वराज्य–Provincial Autonomy.
प्रांतीय विषय–Provincial subjects.
बड़ी सभा–Upper House or Second Chamber.
बल–Force.
बेलचक–Rigid.
बैठक–Session.
भविष्य–Future.
भारत–India.
भारतीय–Indian.
भारतीयकरण–Indianisation.
भारत-मंत्री–Secretary of State for India.
भारत-मंत्री की कौंसिल–India Council.
भूमि-भाग–Territory.
मंत्रि-मंडल–Ministry, Cabinet.

मनोविज्ञान–Psychology.
मातृप्रधान–Matriarchal.
मानव समाज–Humanity.
मालगुजारी–Revenue.
मित्र-राष्ट्र–Allies.
मूल निवासी–Original citizens.
राज्य–State.
राज्य के कार्य–Functions of state.
राज-तंत्र–Monarchy.
राजनीतिक–Political.
राष्ट्र–Nation.
राष्ट्रीय–National.
राष्ट्र-भाषा–National language.
राष्ट्र-संघ–League of Nations.
लचकदार–Flexible.
लार्ड सभा–House of Lords.
लोक-तंत्र–Democracy.
लोक हित साधक–Ministrant.
व्यक्ति या व्यक्तिगत–Individual.
व्यक्तिगत निर्णय–Individual Judgement.
व्यवसायात्मक–Professional.
व्यवस्थापक मंडल–Legislature.
वर्गीकरण–Classification.
वास्तविक–Real.
वाचनालय–Reading room.
विकास–Evolution.
विदेशी–Foreïgn, Foreigners.

विवेक–Discretion.
बिभक्त–Individual.
विश्व प्रेम–Love of Humanity.
विशेष उत्तरदायित्व–Special Responsibility.
वैज्ञानिक–Scientific.
शांति और रक्षा–Law and order.
शासक मंडल–Executive.
शास्त्र–Science.
शासन-प्रणाली–System of Government.
शासन-विधान–Constitution.
शेष विषय–Residuary Subjects.
स्वतंत्रता–Unity.
संगठन–Organisation.
संघर्ष–Conflict.
संघात्मक–Federal.
संघांतरित सरकार–Constituent State.
संघीय न्यायालय–Federal Court.
संचालक–Directors.
संयुक्त–Joint.
संयुक्त विषय–Concurrent Subjects.
संरक्षित–Reserved.
संशोधन–Amendment.
स-कौंसिल भारत-मंत्री–Secretary of State in Council.
सभापति–Chairman.
समाज–Society.
समाज शास्त्र–Social Science.
समुदाय–Association.